ISSN 2454-504X 01-15 जनवरी, 2025 राष्ट्रीय पाक्षिक पत्रिका RNI No. DELHIN/2002/08663

₹ 15

दूसरा मत

दूसरा मत कामयाबी के 22 साल

www.doosramat.com YOUTUBE DOOSRA MAT जहां सच बोलते हैं शब्द

नया साल: साहित्य से सवाल

नववर्ष, लोहड़ी एवं मकर संक्रांति की हार्दिक शुभकामनाएं

नटखट बचपन प्ले स्कूल

एच ब्लाक, आर्य समाज मंदिर,
आर्य समाज रोड, उत्तम नगर,
नयी दिल्ली-110059

अमर सिंह आर्य

महामंत्री
आर्य समाज
उत्तम नगर क्षेत्र
मो. 9312857709

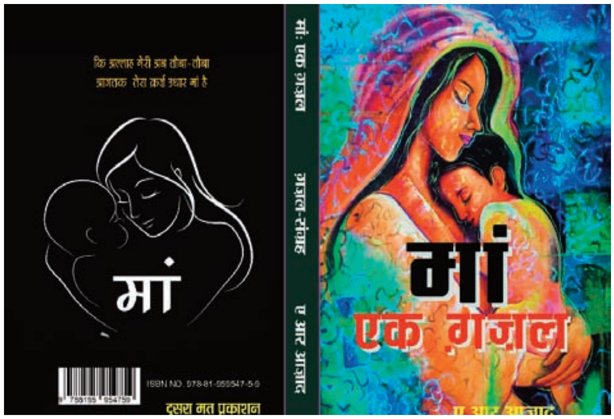

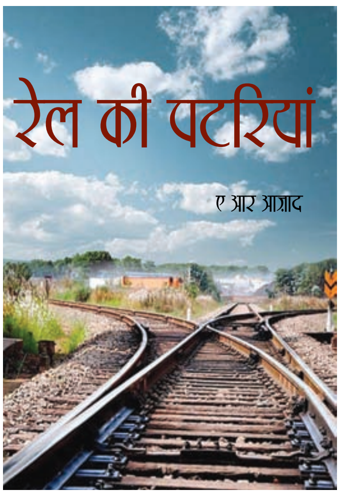

दूसरा मत

पढ़ें और पढ़ाएं
दूसरा मत

एक शुभचिंतक, दिल्ली

दूसरा मत
जहां सच बोलते हैं शब्द

RNI No. DELHIN/2002/08663

वर्षः 24, अंकः 01

01-15 जनवरी, 2025

संपादक
ए आर आज़ाद

संपादकीय सलाहकार
मन्त्रेश्वर झा (IAS R.)
(पूर्व प्रमुख सलाहकार, योजना आयोग, भारत सरकार)

प्रमुख परामर्शी एवं प्रमुख क़ानूनी सलाहकार
न्यायमूर्ति राजेन्द्र प्रसाद
(अवकाश प्राप्त न्यायधीश, पटना उच्च न्यायालय)

प्रमुख सलाहकार
जियालाल आर्य (IAS R.)
(पूर्व गृह सचिव एवं पूर्व चुनाव आयुक्त बिहार)

सलाहकार संपादक
सुरेश दत्त

ब्यूरो प्रमुख
रुफी शमा

राजनीतिक संपादक
देवेंद्र कुमार प्रभात

बेगूसराय ब्यूरोचीफ
सह ब्यूरो बिहार
एस आर आजमी

ब्यूरो ऑफिस बिहार
बजरंगबली कॉलोनी, नहर रोड,
जज साहब के मकान के सामने, फुलवारी शरीफ,
पटना, बिहार-801505

संपादकीय एवं पंजीकृत कार्यालय
81-बी, सैनिक विहार, फेज़-2, मोहन गार्डेन,
उत्तम नगर, नई दिल्ली-110059
Email: doosramat@gmail.com
MOBILE. 9810757843
Whatsapp. 9643709089

स्वामी, मुद्रक, प्रकाशक एवं संपादक
ए आर आज़ाद द्वारा 81-बी, सैनिक विहार, फेज़-2, मोहन गार्डेन, उत्तम नगर, नयी दिल्ली-110059 से प्रकाशित एवं शालीमार ऑफसेट प्रेस, 2622, कूचा चेलान, दरियागंज, नयी दिल्ली-110002 से मुद्रित।
संपादक-ए आर आज़ाद

पत्रिका में छपे सभी लेख, लेखकों के निजी विचार हैं, इनसे संपादक या प्रकाशक का सहमत होना अनिवार्य नहीं। पत्रिका में छपे लेखों के प्रति संपादक की जवाबदेही नहीं होगी।
सभी विवादों का समाधान दिल्ली की हद में आने वाली सक्षम अदालतों में ही होगा।
**उपरोक्त कुछ पद अवैतनिक हैं।*

इंटरव्यू 46
कुमुद विद्यालंकार

इंटरव्यू 50
आचार्य हाशमी

इंटरव्यू 52
डॉ भगवतीशरण मिश्र

इंटरव्यू 56
डॉ विश्वनाथ त्रिपाठी

इंटरव्यू 58
मन्त्रेश्वर झा

इंटरव्यू 62
रमेश पोखरियाल 'निशंक'

यक्ष प्रश्न 06
डॉ अनिल सुलभ

पड़तालः वर्तमान साहित्य और पाठक 38
विमर्शः आधुनिकता औ अस्मिता ... 40
विमर्श मंथनः अस्मिता का संघर्ष और ...42
दस्तकः हिन्दी ग़ज़ल के युवा हस्ताक्षर 44
ग़ज़लेंः माधव कौशिक 64
कविताः डॉ रामदरश मिश्र 66
कविताएंः जाबिर हुसेन 67
कविताएंः प्रतिभा चौहान 70

संपादकीय

ए आर आज़ाद

साहित्य' के बहाने

'साहित्य' आपके हाथों में है। यह मौन रहकर आपसे कुछ सवाल करना चाहता है। इसकी जिज्ञासा आप बहैसियत पाठक भी शांत कर सकते हैं, बतौर राजनेता भी। और बहैसियत समाज की शख़्सियत भी। आप अगर साहित्यकार हैं, तो यह देश, समय और समाज सदियों की तरह आज भी आपसे बतौर साहित्यकार उम्मीद बांधे हुए है। उनकी उम्मीद धुंधली हो चुकी है। कोहरे से ग्रस्त हो चुकी है, या मटमैली हो चुकी है, जो भी हो, लेकिन अब भी आपसे वाबस्ता है।

दिनकर ने प्रधानमंत्री नेहरू को चलते-चलते डगमगाने पर उनकी बांह थामते हुए कहा था कि जब-जब सियासत लड़खड़ाती है, तो उसे साहित्य थाम लेता है। दिनकर को यह कहे हुए और दुनिया से गए हुए एक ज़माना हुआ। लेकिन सियासत की बांह थामने की किसी साहित्यकार में दोबारा दमखम नहीं देखा गया। आज सियासत में क्षरण के बावजूद समाज में जो इतना उसका रूतबा बढ़ा है, उसके ज़िम्मेदार कमोबेश आज के साहित्यकार भी हैं। विश्व के जानेमाने उपन्यासकार डॉ भगवतीशरण मिश्र ने हमारे इंटरव्यू में एक बार कहा था कि नेताओं ने साहित्यकारों को बंधक बना लिया है। अब यह स्थिति थोड़ी सी बदली है। अब साहित्यकार ख़ुद चाहने लगे हैं कि कोई छुटभैय्या नेता भी हमें बंधक बना ले।

समाज साहित्य से बनता है। साहित्य के सृष्टिकर्ता-दृष्टिकर्ता साहित्यकार होते हैं। लेकिन जब साहित्यकार ही कुछ पाने की लालसा में अपने को बेच दें, तो फिर समाज को संवारेगा कौन? तीन भाषाओं के मर्मज्ञ विद्वान और साहित्यकार आचार्य फ़ज़लुर रहमान 'हाशमी' अक्सर कहा करते थे कि साहित्य समाज की ज़ुल्फ़ों को संवारने में कंघी का काम करता है। आज का समाज किसी यतीम के ज़ुल्फ़ों की तरह क्यों बेतरतीब है? कहां खो गए हैं साहित्यकार? कहां सो गए हैं साहित्यकार? क्यों नहीं समाज की ज़ुल्फ़ों को कंघी की तरह संवार रहे हैं? क्या साहित्यकार समाज को संवारने की जगह राजनेताओं की चाकरी करने लगे हैं? क्या साहित्यकार समाज को छोड़कर राजनेताओं को संवारने का काम करने लगे हैं? क्या वे समाज और उसके दर्द से बेपरवाह हो गए हैं? क्या इसीलिए समाज ने भी ऐसे तथाकथित साहित्यकार को अपने दिल व दिमाग़ और ज़हन से निकाल दिया है? क्या इसलिए समाज और साहित्यकार दोनों भटक रहे हैं? भाग रहे हैं राजनीति के पीछे एक मृगतृष्णा के साथ? यह सारे के सारे सवाल इसलिए ज़रूरी हैं कि आज समाज में बिखराव पैदा हो गया है। समाज को एक सूत्र में पिरोने का काम साहित्यकार का है। लेकिन साहित्यकारों ने 'लेफ़्ट' और 'राइट' होकर समाज के ताने-बाने को ही तार-तार कर दिया है। समाज जब-जब भटकाव और बिखराव की ओर होता है, तो उसके एकमात्र साझा ज़िम्मेदार उस काल के राजनेता और साहित्यकार होते हैं। उन्हें अपने गिरेबां में झांकने का समय आ गया है। और समाज के बिखरे ज़ुल्फ़ों को नए सिरे से संवारने का भी वक़्त आ गया है। यही सही समय है साहित्यकारों के जागने का, समाज को जगाने का। अभी नहीं तो फिर कभी नहीं के साथ साहित्यकारों को अपने अंतस को साफ़ कर समाज की गंदी सोच और सियासत को साफ़ करना होगा। वरना यह श्लोक तो हमारे पुरखो ने हमारे और आपके लिए तो पहले से ही लिख दिया है-

दुर्जन: परिहर्तव्यो विद्यालङ्कृतोऽपि सन्।
मणिना भूषित: सर्प: किमसौ न भयङ्कर:॥

क्षमा याचना के साथ। •
जय हिन्द! जय भारत!!

डॉ अनिल सुलभ
लोकप्रिय साहित्यकार

किसी भी राष्ट्र के लिए क्यों आवश्यक है 'एक राष्ट्रभाषा'!

किसी भी व्यक्ति अथवा समाज से संवाद और अपने भावों और विचारों की अभिव्यक्ति के लिए 'भाषा' का होना अनिवार्य है। हमारे आदि-पुरुषों में से जिस महापुरुष ने इसकी खोज की और इसका विकास किया, निस्ससंदेह वे अपने युग के महानतम वैज्ञानिक रहे होंगे। मैं जब भी इस विषय पर चिंतन करता हूं, तो रोमांचित हो उठता हूं और उन सभी अज्ञात महात्माओं के चरणों में मेरा मस्तक श्रद्धा से नत हो जाता है। मैं उस कल्पना-मात्र से सिहर जाता हूं कि यदि भाषाएं विकसित नहीं हुई होती तो मानव-जीवन कैसा होता? लिपि विकसित नहीं होती तो लिखित संवाद और अभिव्यक्तियां किस प्रकार होतीं? क्या उस तरह नहीं, जैसे पशु-पक्षी अथवा अन्य जीव करते हैं! केवल संकेत की भाषा! और उसे भी, सबको समझना क्या इतना सरल होता?

मैंने आलेख के शीर्षक-प्रश्न के उत्तर के अन्वेषण के क्रम में उपरोत्तफ किंतु अति संक्षिप्त भूमिका का आश्रय इस लिए लिया कि हम इसके महत्त्व को ठीक और तात्विक रूप से, समझ पाएं। हम सभी जानते हैं कि संवाद के लिए 'भाषा' अनिवार्य है। संवाद इस लिए अनिवार्य है कि हम एक दूसरे से इसी माध्यम से जुड़ते हैं। एक दूसरे को समझते हैं। भाषा के अभाव में हम संवाद नहीं कर पाते। इस कारण जुड़ नहीं पाते। अनेक प्रकार से निकट का संबंध रख कर भी, हम अलग और पराए बने रह जाते हैं।

भारतवर्ष संसार की सबसे प्राचीन जीवित सभ्यता और विराट संस्कृति-संपन्न राष्ट्र है। हमारी दृष्टि आदि-काल से समावेशी रही है। 'संकीर्णता' हमारे संस्कार में नहीं। हम ने ही संसार को 'मनुष्यता' का अर्थ समझाया था और यह भी बताया कि समस्त वसुधा 'एक कुटुम्ब' है। इस आलेख में 'विश्व एक कुटुम्ब' के विषय को स्थगित रखते हुए, 'राष्ट्र एक कुटुम्ब' पर केंद्रित होकर चलते हैं।

हर एक राष्ट्र को अवश्य ही 'एक कुटुम्ब' होना चाहिए। यही भावना किसी राष्ट्र को एक सूत्र से जोड़ती है। यही राष्ट्रीय भावना है। किंतु यह भावना संपूर्ण राष्ट्र में विस्तार और स्थान का सृजन कैसे करेगी, यदि देश की कोई एक भाषा नहीं हो? यह सत्य है, जो सुंदर भी है कि भारत अनेक संस्कृतियों, विचारों, दर्शन और भाषाओं का अद्भुत संगम-स्थल है। इसकी संस्कृति समावेशी और सबको अपनाने और सम्मान देने के उदात्त दर्शन और चिंतन पर आधारित है। यही चिंतन और दर्शन हमारी एकता की धुरी है। यही हमें बल और स्नेह की ऊर्जा प्रदान करता है।

पूर्व काल में हम और भी सशक्त, समर्थ और संगठित थे। प्राचीन भारत, जब यह आर्यावर्त अथवा ईलावर्त के रूप में जाना जाता था, लगभग संपूर्ण 'एशिया' था। तब हमारी एक भाषा, 'संस्कृत' संपूर्ण आर्यावर्त को ही नहीं, अपने आध्यात्मिक-वैज्ञानिक ज्ञान से संपूर्ण विश्व को 'मनुष्य' बना रही थी। वह हमारा स्वर्णिम-काल था। तब भी अनेक भाषाएं और बोलियां थीं, किंतु 'संस्कृत' को राष्ट्र की भाषा का स्थान था। इसलिए हम भावनात्मक और विचारों के स्तर पर अभिन्न थे, क्योंकि हम आपस में त्वरित संवाद करने में सफल थे। हमें कोई शत्रु मति-भ्रष्ट नहीं कर सकता था। हमारी अखंडता हमारी कुशल संवाद-चेतना और एक भाषा के कारण तोड़ी नहीं जा सकती थी। इसीलिए हम निरंतर समृद्ध होते गए और आनन्द का मार्ग प्रशस्त किया! क्योंकि, हम आध्यात्मिक थे, प्रत्येक मनुष्य ही नहीं प्राणी-मात्र और प्रकृति से भी एकत्व करने में सक्षम थे। यहां तक कि हमने परमात्मा से भी 'एकत्व' का मार्ग (विधि) ढूंढ लिया था और उस सर्वतोभावेन आनंद के महास्त्रोत से जुड़ने में सफल हो गए थे।

मध्य-काल में हम पर बाह्य शक्तियों ने अनेक आक्रमण किए। आरंभ में ये आक्रमणकारी, जो वास्तव में लुटेरे थे, हमारी भौतिक संपदा को लूट ले जाते रहे। किंतु आगे चलकर वैसे ही आक्रमण कारियों के निरंतर आघात से हम कमज़ोर होते गए। उनका संगठित प्रतिकार नहीं कर सके। टुकड़ों में बंटने लगे। छोटी बड़ी अनेक राज-सत्ताएं स्थापित हुईं। सबकी अपनी व्यवस्थाएं और अपनी बोलियां और भाषाएं भी अलग-अलग होती चली गई। धीरे-धीरे संस्कृत का व्यवहार कम होता गया और वह हमारी पुस्तकों और कर्मकाण्डों तक सिमट कर रह गई।

'राज-भाषा', वस्तुतः राजा की भाषा होती है। अर्थात शासन करने वाला जिस भाषा में संवाद करता है, वही 'राज-भाषा' होती है, और वही प्रजा की भी, अर्थात जनता की भाषा हो जाती है। जब प्रायः पूरे देश में, मुग़लों का शासन स्थापित हुआ, वहां राजकीय भाषा 'फारसी' हो गई। क्योंकि वही शासक की भाषा थी। इसीलिए मुग़ल-शासन-काल में ज्ञानार्जन की भाषा और सरकार से संवाद की भाषा 'फ़ारसी' हो गई। शिक्षा का महत्त्व समझने वाले लोगों ने फ़ारसी का अध्ययन आरंभ किया। क्योंकि यह अपरिहार्य था।

फिर जब अंग्रेज़ों ने भारत पर अपना आधिपत्य जमा लिया तो 'अंग्रेज़ी' देश की 'राजकीय' भाषा हो गई। क्योंकि यह राजा (शासक) की भाषा थी। किंतु फ़ारसी और अंग्रेज़ी का भारत में अलग-अलग प्रभाव रहा। फ़ारसी ने 'राज-भाषा' का स्थान तो अवश्य लिया था, किंचित स्तर पर भारतीय आस्थाओं और दर्शन को भी प्रभावित किया, किंतु उसने, भारत के उन मूल्यों का नाश नहीं किया, जिनसे भारत की आत्मा जुड़ी हुई है। किंतु अंग्रेज़ों ने, 'अंग्रेज़ी' के माध्यम से, हमारी मान्यताओं और मूल्यों पर निर्ममता से प्रहार किया और हमारी नीव को झकझोर कर रख दिया। भारत के आत्म-बल (आध्यात्मिक-शत्तिफ) को तोड़कर, भारतीयों को संस्कार-विहीन बनाने, निष्ठाहीन और चि-

रत्र-हीन बनाने की 'मैकाले-शिक्षा-पद्धति' को हम पर थोपा गया। महात्मा गांधी इस भयानक षड्यंत्र को समझ गए थे। इसीलिए उन्होंने कहा था कि 'भले अंग्रेज़ कुछ दिन और भारत में रह लें, किंतु 'अंग्रेज़ी' को देश से अविलंब विदा की जानी चाहिए!

यह दुर्भाग्य है कि अंग्रेज तो चले गए, किंतु 'अंग्रेज़ी' आज तक देश पर राज कर रही है। यह अंग्रेज़ी माध्यम से उत्पन्न किए गए 'काले-अंग्रेज़ों' के कुचक्रों का परिणाम है, जिसे भारत के लोग समझ नहीं पा रहे हैं। भारत के ये 'काले-अंग्रेज़', जिन्होंने अपने अग्रेंज आचार्यों से स्वार्थ और घृणा का ज्ञान अर्जित किया है, नहीं चाहते हैं कि भारत के लोग आपस में कभी संवाद कर सकें। यदि सभी भारत-वासी, संवाद स्थापित करने में सफल रहे, तो उन्हें कौन पूछेगा? उनकी चालें फिर सफल कैसे हो पाएंगी?

किंतु भारत के लोगों को यह सोचना पड़ेगा कि जब कोई अंग्रेज़ भारत का राजा नहीं है, तो 'अंग्रेज़ी' देश की राज-भाषा क्यों बनी हुई है। जब संसार का सारा देश अपनी भाषा में पढ़ता, लिखता और शासन करता है, तो फिर यह भारत अभी तक भाषाई ग़ुलाम क्यों बना हुआ है? देश की स्वतंत्रता के वर्षों बीत जाने के पश्चात भी देश में, देश की कोई एक भाषा इतनी विकसित नहीं हो पाई, कि उसे देश की राष्ट्र-भाषा बनाई जा सके? क्या यह समस्त भारत वासियों के लिए 'वैश्विक-लज्जा' का विषय नहीं है? विद्वानों ने कहा है कि जिस राष्ट्र की अपनी भाषा नहीं होती, वह 'गूंगा' होता है। तो क्या भारत गूंगा गा नहीं है?

भारत की एक राष्ट्र-भाषा हो, इस विचार का विरोध करने वाले लोग, इस महत्त्व को जानते हुए भी, केवल अपने राजनैतिक लाभ के लिए विरोध करते हैं और यह दलील देते हैं कि उससे देश की अन्य प्रांतीय भाषाओं पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ेगा। पर क्या वे नहीं जानते, कि भारत जैसे अभिशप्त कुछ अपवाद को छोड़कर, संसार के सभी राष्ट्रों की अपनी एक राष्ट्र-भाषा है। और, संसार में कोई भी एक राष्ट्र ऐसा नहीं है, जहां केवल एक ही भाषा हो। सभी देशों में अनेक भाषाएं और बोलियां है। फिर भी वहां कोई न कोई देश की एक राष्ट्र भाषा है। अपने पड़ोसी देश चीन को ही लें, जहां की राष्ट्र-भाषा मंदारिन है। लेकिन वहां भी अनेक भाषाएं हैं, जो अलग-अलग क्षेत्रें में बोली जाती हैं, तथा उन भाषाओं को कोई भी क्षति 'मंदारिन' के राष्ट्र-भाषा बनने से नहीं हुई है।

कुछ लोग यह कहते हैं कि 'हिन्दी' के 'राष्ट्र-भाषा' बना दिए जाने से अहिन्दी प्रदेशों के लोगों को हिन्दी सीखनी पड़ेगी, जो एक बोझ होगी। उनसे यह पूछा जाना चाहिए कि क्या वे अंग्रेज़ी नहीं सीखते? इस देश की किस प्रांत, किस स्थान या किस शहर की मातृ-भाषा अंग्रेज़ी है, जो उसके पुरखे बोलते आए हैं ? यदि अंग्रेज़ी सीखी जा सकती है, तो हिन्दी क्यों नहीं? कम-से-कम यह तो अपने राष्ट्र की भाषा है। एक अत्यंत सरल, मनोहर और वैज्ञानिक भाषा, जिसमें वही पढ़ा जाता है, जो लिखा जाता है। जैसा लिखा जाता है, ठीक वैसा ही पढ़ा जाता है। अंग्रेज़ी की तरह नहीं, कि लिखते हैं - 'बुट' और पढ़ते हैं 'बट।'

इसीलिए भारत के सभी भाषा-वैज्ञानिकों ने 'हिन्दी' को सबके लिए सहज ग्राह्य बताते हुए, इसे भारत की 'राष्ट्र-भाषा' बनाए जाने की बात करते रहे हैं। विद्वानों ने माना है कि संपूर्ण राष्ट्र को एक सूत्र में पिरोने और एक सुदृढ़ 'प्रेम-बंधन' स्थापित करने में, हिन्दी सर्वथा सक्षम है। संपूर्ण भारतवर्ष को इसे 'राष्ट्र-भाषा' के रूप में स्वीकार करना चाहिए। भारतवर्ष के सभी प्रबुद्ध और आमजन इस विचार से सहमत भी हैं। क्या उत्तर, क्या दक्षिण, क्या पूरब क्या पश्चिम, संपूर्ण भारतवर्ष में यह आम स्वीकृति है कि हिन्दी को देश की अवश्य ही संपर्क-भाषा होनी चाहिए। और यह स्थित तभी बनेगी, जब यह देश की 'राष्ट्र-भाषा' घोषित होगी। इसके समक्ष बाधक तत्त्व देश के किसी भी क्षेत्र की जनता नहीं, केवल और केवल आधार हीन और स्वार्थी राजनेता हैं, जो आज भी काले अंग्रेज़ों की मानसिकता से ऊबर नहीं पाए हैं। उन्हें भी इस दृष्टि से विचार करना चाहिए कि हिन्दी को अंग्रेज़ी का विकल्प बनाया जा रहा है, देश की किसी अन्य भाषा का नहीं। विदेश की कोई भाषा, उनके देश की रानी बनी हुई है, विवशता बनी हुई है, यह तो उनके लिए भी क्या कम लज्जा का विषय है?

हमें इस दृष्टि से भी विचार करना चाहिए कि उत्तर के लोग दक्षिण में जाकर 'परायापन' का बोध करें और दक्षिण के लोग उत्तर में, तो क्या यह भी कम दु-खदाई है? क्या उन लोगों को ऐसा नहीं लगता कि वे पराए देश में आ गए हैं। अपने ही देश के लोगों को, अपने ही देश में कहीं अन्यत्र जाने पर संवाद करने में बाधा हो, परायापन का बोध हो, क्या यह चिंता का विषय नहीं होना चाहिए? यदि चीन में भी ऐसा ही होता तो क्या वे सभी आपस में बात कर पाते? क्या उन्हें भी दुभाषिए का सहारा नहीं लेना पड़ता? आज चीन की भाषा 'मंदारिन', संख्या की द्दष्टि से संसार की सबसे बड़ी भाषा है, तो इसका कारण यही है कि वह चीन की 'राष्ट्र-भाषा' है? राष्ट्रभाषा होने के कारण ही, चीन का प्रत्येक नागरिक यह भाषा जनता, समझता और बोलता-लिऽता है। इसीलिए तो वह संसार में प्रथम स्थान पर है। यदि हिन्दी भारत की राष्ट्र-भाषा बना दी गयी रहती, तो क्या यह स्थान हिन्दी को नहीं मिला होता ?

इसी प्रकार संविधान निर्माण के समय लिपि को लेकर भी एका की बात उठी थी। अनेक लोग थे जो यह चाहते थे कि 'हिन्दी' देश की राष्ट्र-भाषा और राष्ट्र-लिपि 'देवनागरी' हो जाए। लिपि को लेकर पिछली सदी के महान संत और भाषा विज्ञानी विनोबा भावे की राय थी कि देवनागरी लिपि का बहुलांश में उपयोग हो। वे भाषा-भाषी भी जिनकी लिपियां अलग-अलग हैं, पट्टिद्धकाओं पर, मील के पत्थरों पर, देवनागरी लिपि का प्रयोग करें। जितना अधिक हो सके देवनागरी का प्रयोग करें! उससे यह होगा कि देवनागरी जानने वाले सभी लोग उन भाषाओं को भी पढ़ने लगेंगे और प्रयत्न कर समझने भी लगेंगे। इससे अनेक भाषाओं का ज्ञान होगा और इन भाषाओं के शब्दों के प्रयोग भी अन्य भाषाओं में होने लगेंगे। इससे अन्य भाषाएं भी समृद्ध और विस्तृत होंगी। उनका चतुर्दिक विकास होगा।

किंतु यह सब कुछ तभी संभव होगा, जब सकारात्मक विचार वाले सभी लोग एक जुट हों, उन विचारों को एक स्वर दें, जिनसे भारत एक, सुदृढ़ और समृद्ध हो! पहली चेष्टा इस रूप में की जा सकती है कि संपूर्ण भारत, संकीर्ण राजनैतिक स्वार्थ का त्याग कर राष्ट्र-हित में, 'एक राष्ट्र, एक राष्ट्रभाषा और एक राष्ट्र-लिपि' का दीर्घ स्वर दे और भारत की सरकार से मांग करे कि विना विलम्ब किए 'हिन्दी' को राष्ट्र-भाषा घोषित करे! जिससे कि हम वैश्विक-लज्जा के कलंक से मुक्त हो सकें। स्वार्थी तत्वों के दुष्प्रचार के कारण शंका में पड़े लोगों को समझाया जाए कि इससे भारत की किसी भी अन्य भाषा के हित पर कोई संकट नहीं आएगा। प्रांतों में, प्रांतीय-भाषा को, 'राजभाषा' (प्रांतीय सरकारों की) बनायी जाए। प्रांतीय सरकारें हिन्दी को दूसरी राजभाषा भी बनाए तो किसी को कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिए। बस इतना हो कि संपूर्ण भारतवर्ष हिन्दी पढ़े। कम से कम हिन्दी में संवाद करने के योग्य हो जाए। अपनी भाषा के मूल्यवान ग्रंथों का हिन्दी अनुवाद करने में सक्षम हो जाए, हिन्दी के उपयोगी ग्रंथों का अपनी भाषा में अनुवाद कर सके तो और अच्छा हो। तब भारत एक ऐसे दिव्य एकत्व को प्राप्त करेगा, जिसमें झांक कर संसार के दूसरे राष्ट्र भी अपने को धन्य समझेंगे! एक बार फिर भारत विश्व गुरु होगा और संपूर्ण वसुधा को कुटुम्ब बनाने का मंत्र भी सफल होगा।

जय हिंद ! जय हिन्दी ! ●

(लेखक बिहार हिन्दी साहित्य सम्मेलन के अध्यक्ष हैं)

आचार्य फ़ज़लुर रहमान हाशमी
हिन्दी, उर्दू एवं मैथिली के मर्मज्ञ साहित्यकार

विश्व प्रसिद्ध साहित्यकार, स्वतंत्रता सेनानी एवं शिक्षाविद् मौलाना सैयद मोहसिन यहिया तिरहुति का ऋणी है देश और बेगूसराय

बेगूसराय का साहित्य वह साहित्य है, जिस पर पूरी दुनिया को गर्व है। और बेगूसराय के प्रति कृतज्ञ भी है, जिससे बेगूसराय के विद्वानों का एक बड़ा तबक़ा भी अनभिज्ञ रहा है। किसी क्षेत्र विशेष के साहित्य का इतिहास भाषा नहीं भाषाओं पर आधारित रहता है, जिसकी अवहेलना किसी न किसी रूप में हुई है।

इसी सरज़मीन बेगूसराय के मुज़फ़रा नामक ग्राम में जो अब वीरपुर प्रखंड का एक क्षेत्र है, अरशैख़ुल आलम अलमुहद्दीस हज़रत मौलाना सैयद मोहसिन बिन यहिया तिरहुति रहमतुल्लाह अलैह 1805 ई. में पैदा हुएं। इन्होंने संपूर्ण भारत में घूम-घूमकर उस समय के क़रीब-क़रीब तमाम विद्वानों से अरबी भाषा की शिक्षा ली। फिर मिस्त्र, मक्का व मदीना शरीफ़ैन तक शिक्षा के लिए गए।

यह इतिहास का एक विचित्र अध्याय है कि जो शिक्षा लेने मक्का शरीफ़ गए, वहां उनसे बड़े-बड़े अरबी भाषा के विद्वानों को शिक्षा देने का काम दुनिया के सबसे पवित्र स्थल 'मस्जिद-ए-हराम' में बैठाकर 7 वर्षों तक लिया गया। मौलाना मोहसिन के अथाह ज्ञानसागर ने मक्का के नियम को तोड़ा। इसके पूर्व के नियमानुसार 'मस्जिद-ए-हराम' में वे ही शिक्षा दे सकते थे, जिनकी मात्रभाषा अरबी होती।

इससे एक हिन्दुस्तानी आलीम मौलाना मोहसिन की अरबी योग्यता का अंदाज़ा लगाया जा सकता है। सात साल तक लगातार एक बेगूसराई मौलाना ने अरब एवं दूसरे देशों के आलीमों को इस्लामी नियम-क़ानून की शिक्षा दी, जो इस्लाम के प्रवर्तक का जन्म स्थल था। और स्वयं भी कभी विराजमान रहा करते थे। पूरी दुनिया के मुसलमानों के लिए वह स्थल सर्वाधिक पावन है।

उसके बाद मौलाना मदीना शरीफ़ चले गये। यहां उन्होंने अरबी भाषा में **'अलयानलजिनी फीअसानीद शैख़ अब्दुल ग़नी'** नामक ग्रंथ लिखा। दुनिया के कई विद्वानों के अनुसार जिसमें मुफ़्ती ए आज़म पाकिस्तान मुफ़्ती मुहम्मद शफ़ी उस्मानी भी हैं, कहते हैं कि जिसने**अलयानलजिनी** नहीं पढ़ी वह हदीस शरीफ़ (मुहम्मद साहब के अमृत वचनों का संग्रह) को समझने का सही दावा ही नहीं कर सकता है। उस पुस्तक की शैली देखकर कोई कह नहीं सकता कि लेखक अरबी भाषी नहीं हैं।

सुक्ष्म दृष्टि और मौलिक सूझ प्रत्येक स्थान पर विद्यमान है। सहजता उनकी भाषा की विशेषता और मिठास उपलब्धियों के रूप में है।

वे दबंग, तेजस्वी और स्पष्ट वक्ता के रूप में भी विभिन्न देशों में स्वीकारे गए हैं। वे सिद्धांत के मामले में काफी कठोर थे। लेकिन उनकी कठोरता भाषा को जटिल बनाने से दूर रही है। इस तरह कहा जा सकता है कि वे 'व्रजादपि कठोर' किन्तु 'मृदुनि कुसुमादपि' समीक्षय आलोचक और अनुसंधानकर्ता थे।

भारत के सुप्रसिद्ध विद्वान मौलाना सैयद अबुल हसन नदवी के अनुसार उस काल में उनका दूसरा उदाहरण मौजूद न था।

मौलाना सैयद अब्दुल हई हुसनी ने भी उन्हें उस दौर का पूरी दुनिया के पैमाने पर बड़ा विद्वान माना है।

मौलाना मोहसिन जब मक्का और मदीना से वतन वापस आए तो उनके साथ 40 हज़ार अमूल्य पुस्तकें थीं, जिसका संबंध इस्लाम धर्म से था। उन 40 हज़ार पुस्तकों में मूल पुस्तकों के साथ अनुवाद और हस्तलिखित का भी भंडार था।

सैयद अब्दुल हसन नदवी उर्फ़ अली मियां के अनुसार हज़रत मोहसिन यहिया ने **'अलयानलजिनी फीअसानीद शैख़ अब्दुल ग़नी'** किताब को लिखकर बुध के दिन शाम को फ़ारिग़ हुए। रज्जब के 11 दिन बाक़ी थे। हिजरी 1280 थी। उन्होंने इस किताब को मदीना मुनव्वरा जो रसूल करीम का मुबारक शहर है, में लिखा है। उनपर दरुद-ओ-सलाम।

'अलएलाम' पुस्तक की पृष्ठ संख्या-447 के अनुसार उनके ज़माने में शायद ही उनकी दूसरी मिसाल मिले।

कुछ लोगों ने तो मोहसिन यहिया को कांग्रेसी भी कह दिया। मगर यह बात बिल्कुल भ्रामक है। क्योंकि उस समय कांग्रेस की स्थापना भी नहीं हुई थी। हां, मौलाना मोहसिन यहिया अंग्रेज़ों के बड़े दुश्मन थे। और 1857 ईंस्वी में मेरठ में तलवार लेकर आलिमों की एक बड़ी जमायत को अग्रेज़ों के ख़िलाफ़ मोर्चा संभालने को प्रोत्साहित करते हुए ज़रूर देखे गए थे।

दरअसल मौलाना मोहसिन यहिया ने अंग्रेज़ों के दांत खट्टे करने के लिए भारतीय आलिमों की दावत पर मेरठ में स्वतंत्रता संग्राम का नेतृत्व संभाला था। 1857 में मेरठ में अंग्रेज़ों के ख़िलाफ़ मोर्चा संभालने के लिए उन्हें देश से आमंत्रित किया गया। उन्होंने मेरठ आकर आलिमों को प्रोत्साहित एवं उनका नेतृत्व भी किया। इस तरह से उनकी इस तरह की कुछ बातें सीने-ब सीने ख़ानदान में चली आ रही हैं। उनका ख़ानदान इराक़, अफ़ग़ानिस्तान के बाद भारत के मेरठ में भी बेगूसराय आने के पूर्व ठहरा था। ख़ानदानी वंशावली के अनुसार मौलाना मोहसिन का संबंध हज़रत मौलाना सैयद अब्दुल अज़ीज़ मोहद्दिस देहलवी तक जाता है। उसके ऊपर की पढ़ी नहीं जा सकी थी, जो बेगूसराय के ख़िज्रचक की लाइब्रेरी में क़रीब 1950 तक सुरक्षित थी। यह लिखना अनिवार्य सा हो जाता है कि मौलाना के पिता जब मौलाना शैशवकाल के ही थे ख़ानदानी जगह मुज़फ़रा को छोड़कर ख़िज़्रचक ग्राम में बलान नदी के किनारे आकर बस गए। इसका कारण भीठ का पुल बना। इस सुलेश गेट के बनने से मुज़फ़रा बूढ़ी गंढ़क से किश्ती से दलसिंहसराय सपरिवार जाना मुश्किल हो गया था। दरअसल दलसिहंसराय में उनकी एक कचहरी थी। और वह उनके लिए सुरक्षित स्थानों में से एक था। वजह यह थी कि किसी समय अंग्रज़ों के ज़ुल्म से बचने के लिए पनाह ली जा सकती थी। दरअसल वह ख़ानदान अंग्रेज़ों के सख़्त ख़िलाफ़ था।

मौलाना मोहसिन जब अपने घर ख़िज़्रचक आने लगे तो उन्होंने मक्का, मदीना और अन्य मुस्लिम देशों से प्रकाशित और हस्तलिखित किताबों का एक बड़ा भंडार हासिल किया, जिसमें अरबी साहित्य दर्शन और मीमांसा से संबंधित हज़ारों नायाब और अमूल्य ग्रंथ थे। किताबों की कुल संख्या 40 हज़ार के क़रीब थी। तमाम किताबों के योग से **'ख़िज़्रचक कुतुब ख़ाना'**का निर्माण हुआ। इस पुस्तकालय ने शीघ्र ही भारत में अपना एक विशेष स्थान बना लिया। कहा जाता है कि विदेशों से भी शोधकर्ता ख़िज़्रचक यानी बेगूसराय ज़िला एवं बरौनी प्रखंड का एक गांव आने लगे। उस्मानिया यूनिवर्सिटी से तो काफ़ी छात्र शोध को आते थे। जिन लोगों के लिए ख़ास प्रबंध रहा करता था। भारत के सुप्रसिद्ध

विद्वान सैयद सुलेमान नदवी, अब्दुर रहमान देसनवी, मौलाना मोनाज़िर अहसनी गिलानी, मौलाना बदरुद दुजा कामिल, सैयद मोईनउद्दीन नदवी, मौलाना फ़िदा हुसैन आदि भी इस पुस्तकालय से लाभान्वित हुए हैं। उनके बाद भी **'यहिया वक़्फ़ स्टेट ख़िज्ऱचक'** के ज़रिए जनहित का काम चलता रहा। पुस्तकालय और मदरसा दोनों उरुज़ पर रहा, जिसका सारा श्रेय ख़ान बहादुर मियां जान बाबू के सिर जाता है। उन्होंने शिक्षा के प्रचार-प्रसार में काफ़ी नाम कमाया। उनके संचालित मदरसा अपनी मिसाल आप था। वहां हज़ारों छात्र दूर और निकट के शिक्षा ग्रहण करते थे, जिनमें क़रीब 7 सौ के रहने-खाने और किताबों का ख़ास प्रबंध था। यहां तक कि उन छात्रों को घर जाने का किराया भी दिया जाता था।

उस ख़ानदान के कई लोग बेगूसराय के ऑनरेरी मजिस्ट्रेट हुए, जिनमें अंतिम बशीर उद्दीन अशरफ़ थे।

लेकिन बाद में एक ऐसा लम्हा आया कि मदरसा ख़त्म हुआ। लाइब्रेरी टूटी। वहां की कुछ ही किताबें **'ख़ुदाबख़्श लाइब्रेरी'** तक पहुंच पायी। हाल के ज़माने तक ख़िज्ऱचक के विशाल खंडहर अपनी मूक भाषा में उसका इतिहास और भूगोल बयां करते थे।

ग़ौरतलब है कि ख़ान बहादुर मियांजान अशरफ़ के दो पुत्रों में छोटे नज़ीर उद्दीन अशरफ़ बड़े सरल, उदार और दीनप्रिय व्यक्ति थे। बड़ों का नाम ऑनरेरी मजिस्ट्रेट के रूप में आ चुका है।

मिलाजुलाकर आज भी वह ख़ानदान भारत के किसी भी बड़े ख़ानदान के सामने सर उठाकर खड़ा हो सकता है। जमशेद अशरफ़ (पूर्व मंत्री), डॉ. सुरैया रहमान (लेडी डॉक्टर कोलकाता), डॉ. नाहिद (लेडी डॉक्टर कोलकाता), आचार्य फ़ज़्लुर रहमान हाशमी (तीन भाषाओं के मर्मज्ञ साहित्यकार एवं साहित्य अकादेमी अवार्ड प्राप्त), ए आर आज़ाद प्रिंट व इलेक्ट्रोनिक मीडिया के वरिष्ठ पत्रकार व साहित्यकार एवं संपादक दूसरा मतः राष्ट्रीय पाक्षिक पत्रिका, नयी दिल्ली) आदि उसी ख़ानदान की नयनज्योति हैं।

मौलाना सैयद मोहसिन ने सिर्फ़ बेगूसराय का नाम दुनिया में स्थापित किया। बल्कि मुज़फ़रा और ख़िज्ऱचक को भी दुनिया के नक़्शे पर लाकर खड़ा दिया। उन्होंने देश की आज़ादी में अभूतपूर्व भूमिका अदा की। उन्होंने 1857 की लड़ाई में अपने देवभूमि को छोड़कर भारत का सदा के लिए रुख़ किया। और मेरठ आकर आज़ादी के दीवानों को एक नई दिशा दी। उन्होंने मेरठ से लेकर बेगूसराय तक अंग्रेज़ों के ख़िलाफ़ अपना बिगुल बजाते रहे। एक तरफ़ आज़ादी की लड़ाई लड़ते रहे। दूसरी तरफ़ मदरसा और पुस्तकालय के ज़रिए देश के लोगों में शिक्षा और साहित्य का अलख जगाते रहे। वे स्वयं में एक बहुत बड़े साहित्यकार थे। उन्होंने मक्का, मदीना और मिश्र में कई किताबें लिखकर दुनिया के सामने एक नज़ीर पेश की। यही वजह है कि दुनिया के आलीमों में उनका स्थान 750वां बताया गया है। ●

डॉ. भगवतीशरण मिश्र
विश्व प्रसिद्ध उपन्यासकार

राष्ट्रकवि दिनकर

राष्ट्र कवि डॉ. रामधारी सिंह दिनकर का मैं स्मरण करता हूं तो कई बातें मन-मस्तिष्क को प्रफुल्लित कर जाती हैं। उनसे मेरी एक बार मुलाक़ात अत्यन्त ही सुखद और प्रेरणादायी रही है और उनसे मेरे जीवनपथ को प्रशस्त करने में महवपूर्ण योगदान दिया पर राष्ट्र कवि से अपने इस साक्षात्कार के वर्णन पर आने के पूर्व कुछ अन्य बातें भी करनी हैं जो कुछ कम महवपूर्ण नहीं हैं।

डॉ. दिनकर वस्तुतः हिन्दी काव्य-गगन के प्रखर मार्तन्ड ही हैं। इनकी कविता कहीं प्रातः की रवि-रश्मियों की तरह सुकोमल हैं जो पाठकों के मन-रूपी कमल को अपने स्पर्श से उत्फुल्ल कर देती हैं तो कहीं वे दोपहर के प्रचंड सूर्य की तरह शत्रुओं-विरोधियों, आतंकियो को ज्वाला-दग्ध करने में सक्षम है। उनकी आरम्भिक काव्य-पुस्तकें जैसे 'रेणुका' एवं 'कविता की पुकार' आदि में इनका कोमल स्वर हमें सहलाता लगता है। यहां पर कवि जीवन-यथार्थ की बातें करता प्रतीत होता है न कि अपने प्रिय विषय राष्ट्रीय स्वातंत्रय की।

इनकी सुकोमल पंक्तियों को दो-दो, तीन-तीन पीढ़ियों ने साथ-साथ पढ़ा और काव्य-रस से सराबोर हो गईं। मुझे पूरी तरह स्मरण है कि दिनकर की निम्नलिखित पंक्तियों को मेरे पिताजी ने अपनी डायरी में उतार रखी थीं। वह घर में उसे सस्वर सुनाते तो मैं और मेरे पितामह दोनों इनका भरपूर रसास्वादन करते। मेरी उम्र उस समय 13-14 वर्ष की होगी और मैं शायद आठवीं कक्षा का छात्र था।

'माया के मोहक वन की
क्या कहूं कहानी परदेशी।
भय है सुन कर के हंस दोगे
मेरी नादानी परदेशी।
है सत्य कि खिलकर
झड़ जाते हैं फूल यहां।
जो अनुकूल वही बन जाते।
दुर्दिन में प्रतिकूल यहां॥
मरते कोमल वत्स यहां
बचती न जवानी परदेशी॥
माया के मोहक वन की।
क्या कहूं कहानी परदेशी॥'

मुझे स्वयं दिनकर की कोई कृति पढ़ने का अवसर तब मिला जब मैं उच्च विद्यालय में गया और वहां की पुस्तकालय से मैंने उनकी पुस्तक 'रश्मिरथी' निकलवाई और उसका अध्ययन किया। मैं उनकी पुस्तक से अत्यन्त प्रभावित हुआ। मेरे पाठ्य क्रम में भी दिनकर की कोई कविता थी जिसके शीर्षक का स्मरण मुझे इस समय नहीं है। इस कविता से प्रभावित होकर ही मैंने 'रश्मिरथी' को पढ़ने का मन बनाया था।

'रश्मिरथी निश्चय ही कवि की एक उत्कृष्ट कृति है। कवि के काव्य को विविध आयाम प्रदान करने वाली कृतियों में यह एक है। इस पुस्तक में जीवन-मूल्यों की उदात्तता पर विशेष जोर दिया गया है। कर्ण यद्यपि सूत-पुत्र है अर्थात् सामाजिक दृष्टि से निम्न जाति में उसका लालन-पालन हुआ है पर कवि ऊंच-नीच में भेद नहीं करता। उसे श्रीमद्भगद्गीता के समभाव में आस्था है जिसे गीता ने 'समत्वं योग उच्चते' के रूप में परिभाषित किया है। कवि कर्ण की जाति पर नहीं उसके गुणों पर जाता है। और यही 'रश्मिरथी' पढ़ते समय मेरे अन्तर्मन को छू गई थी। वह स्पष्ट कहता है-

'जय हो जग में जले जहां भी।
नमन पुनीत अनल को ॥
जिस नर में भी बसे।
हमारा नमन तेज को बल को॥
..........।

नहीं खिलते कुसुम मात्र।
राजाओं के उपवन में॥
अमित बार खिलते वे।
पुर से दूर कुंज कानन में॥

कवि की प्रसिद्ध कृति 'कुरूक्षेत्र' को पढ़ने का अवसर मुझे स्नातक स्तर पर प्राप्त हुआ। इस समय मैं अपने घर में ही उपलब्ध 'रामायण', महाभारत आदि कृतियों का अध्ययन उनके अनुवाद के आधार पर कर गया था, अतः महाभारत-युद्ध के एक अंश पर आधृत इस कृति ने मुझे बहुत ही प्रभावित किया और इसकी कई पंक्तियां मुझे आज भी कंठस्थ हैं। कवि युद्ध का नहीं शान्ति का पक्षधर है, लेकिन यह शान्ति गांधीवादी नहीं है जिसके अनुसार कोई एक गाल पर तमाचा मारे तो दूसरा भी उसके सामने कर दो। वह इस तथ्य में विश्वास करता है कि अगर शान्ति से काम नहीं चलता है तो युद्ध ही उसका परिर्याय है। कु रूक्षेत्र की ये पंक्तियां उसकी इस अवधारणा को स्पष्ट करती हैं--

रूग्ण होना चाहता कोई नहीं।
रोग लेकिन आ गया जब पास हो॥

तिक्त औषधि के सिवा उपचार क्या ?
शमित वह होगा नहीं मिष्ठान से॥

मैंने इसके पूर्व भगवतीचरण वर्मा की प्रसिद्ध पुस्तक 'चित्रलेखा' का अध्ययन उच्च वि-श्वविद्यलय के पुस्तकालय से ही प्राप्त कर किया था। श्री वर्मा की वह औपन्यासिक कृति पाप और पुण्य के विश्लेषण पर आधृत है। कुरूक्षेत्र में भी जब दिनकर ने अपने ढंग से पाप-पुण्य एवं धर्म-अधर्म की बात की तो उनकी अभिव्यक्ति ने मुझे बहुत प्रभावित किया। कुरूक्षेत्र की उनकी निम्नलिखित पंक्तियां आज भी मुझे स्मरण हैं-

है बहुत देखा सुना मैंने मगर।
भेद खुल गया न धर्माधर्म का॥
आज तक ऐसा कि रेखा खींचकर।
बांट दूं मैं पाप और पुण्य को॥
हो स्वत्व कोई छीनता।
तू त्याग तप से काम ले यह पाप है॥
पुण्य है विच्छिन्न कर देना उसे।
बढ़ रहा तेरी तरफ़ जो हाथ है॥

कवि अपनी अशान्ति जो वस्तुतः राष्ट्रीय परतंत्रता को लेकर है को जब भी अवसर मिलता है अभिव्यक्त करने में पीछे नहीं रहता। शान्ति की शीतलता का आकांक्षी कवि जब शान्ति एवं अहिंसा द्वारा देश की स्वतंत्रता-प्रप्ति की प्रतीक्षा करते-करते अपना धैर्य खो बैठता है तो उसका पौरूष उसे ललकारता है और वह शान्ति को तिलांजलि देने को तत्पर हो उठता है। तब वह अपने वास्तविक रूप को आग उगलते शब्दों में 'हुंकार' के इन शब्दों में रेखांकित करता है-

सुनूँ क्या सिन्धु मैं गर्जन तुम्हारा,
स्वयं युग धर्म का हुंकार हूं मैं,
कठिन निर्घोष हूं भीषण अशांति का,
प्रलय गाण्डीव की टंकार हूं मैं
दबी-सी आग हूं भीषण क्षुधा की,
दलित का मौन हाहाकार हूं मैं,
सजग संसार तू निज को संभाले,
प्रलय का क्षुब्ध पारावार हूं मैं।

आज दलित साहित्य की बात बहुत होती है। कवि ने बहुत पहले उपर्युक्त पंक्तियों में अपने को दलितों के 'मौन हाहाकार' की ही संज्ञा नहीं दी है अपितु उनकी 'भीषण क्षुधा' की 'आग' भी अपने को बताया है। वस्तुतः 'रश्मी-रथी' में ही जिस कर्ण की उसने खुल कर वकालत की है, वह दलितों का ही तो प्रतिनिधि है। एक सफल कवि की रचना स्थान और सीमाओं से परे होती है। यही है सर्वदेशीय कालजयी कवि की पहचान। दिनकर की इसी पहचान ने उन्हें विश्व-कवियों की पंक्ति में अग्रणी स्थान प्रदान किया है।

'हुंकार' की ही बात नहीं, कवि अपनी आगे की कई कृतियों में अपना स्वर तीखा करता है। उसकी काव्यकृति 'सामधेनी' में जब वह देखता है कि भारत की स्वतंत्रता अपने राष्ट्र के क्षितिज पर कहीं अवलोकित नहीं हो रही है और कई परतंत्र राष्ट्र स्वतंत्र होते जा रहे हैं तो वह राष्ट्रवासियों को ललकारता है। यहीं पर वह देश में व्याप्त जातिगत, धर्मगत, अर्थगत विषमता पर भी क्रूर प्रहार करता है। उसी के शब्दों में-

अन्ध विषमता के विरूद्ध सारा संसार उठा है,
अपना बल पहचान, लहरकर पारावार उठा है,
छिन्न-भिन्न हो रही मनुजता के बंधन की क-ड़ियाँ,
देश-देश में बरस रही आज़ादी की फुलझड़ियाँ।

दिनकर समृद्ध भारतीय संस्कृति के आस्थावान कवि हैं किन्तु हमारे 'अहिंसा परमो धर्मः' ने हमारा कितना अहित किया है, इसका भी उन्हें अभिज्ञान है। वह शास्त्र को जितना महत्व देते हैं उससे कम शस्त्र को नहीं। इस दृष्टि से वे संस्कृत की इस उक्ति में विश्वास करते है कि व्यक्ति के मुख में तो सरस्वती हों लेकिन पीठ पर धनुष-बाण।

उन्होंने अपनी लम्बी कविता 'परशुराम की प्रतीक्षा' जिसे उन्होंने 1962 के चीनी आक्रमण के समय लिखा था में अपनी इसी अवधारणा को बल दिया है-

है एक हाथ में परशु, एक में कुश है,
आ रहा नए भारत का भाग्यपुरूष है,
जो संत धर्म के लिए खड्ग धरता है।

कवि दिनकर आरम्भ में कोमलकान्त पदावली की ओर उन्मुख जो दिखते हैं किन्तु धीरे-धीरे वह साम्यवादी रूप भी ग्रहण कर लेते हैं। 'चलो कवि वन-फूलों की ओर' पंक्ति लिखने वाला कवि कुरूक्षेत्र में भीष्म पितामह से युधिष्ठिर को जो कुछ कहलवाता है, वह पूरी तरह साम्यवादी प्रवृत्ति का ही द्योतक है। अगर हम कवि को साम्यवादी कहने से परहेज भी करें तो उसे समर्पित समाजवादी तो अवश्य ही कह सकते हैं-

धर्मराज ! यह भूमि किसी की नहीं क्रीत है दासी,
है जन्मना समान परस्पर इसके सभी निवासी।
जो कुछ न्यस्त प्रकृति में है, वह मनुज मात्र का धन है,
धर्मराज! उसके कण-कण का अधिकारी जन-जन है।

यह सत्य है कि 'उर्वशी' पर आते-आते दिनकर की काव्य-कला पराकाष्ठा को प्राप्त करती है किन्तु इसके पूर्व की सभी रचनाएं अपने-अपने रूप में महत्वपूर्ण हैं और विषय-विविधता से भरी हैं। जिन कृतियों के नाम हमने नहीं लिए उनका भी उल्लेख कर देना आवश्यक है, ये हैं- 'विपथगा', 'हाहाकार', 'नीम के पत्ते', 'तांडव' और 'अतीत के द्वार पर'।

राष्ट्र कवि दिनकर की इतनी सारी रचनाओं के अध्ययन के पश्चात् मेरे मन में यह स्वाभाविक जिज्ञासा जगी कि मैं कभी इस महाकवि के दर्शन का लाभ प्राप्त करता। कठिनाई यह थी कि दिनकर राज्यसभा के सदस्य हो दिल्ली में निवास करने लगे थे और मैं पटने में था। ऐसी स्थिति में मिलने का और उनसे दो बातें करने अथवा आशीर्वाद ग्रहण करने का अवसर ही नहीं प्राप्त हो रहा था।

संयोग से यह अवसर भी प्राप्त हो ही गया। यह 1976 की बात होगी। मैं उस समय बिहार हिन्दी ग्रन्थ अकादमी पटना का निदेशक था। अकादमी ने स्व. बद्री नारायण सिन्हा की एक पुस्तक प्रकाशित की थी जिसका शीर्षक था 'अपराधिकी'। श्री सिन्हा उस समय पुलिस के डी. आई. जी के रूप में पटने में पदस्थापित थे। वे

एक अच्छे साहित्यकार भी थे। इसके पूर्व हम दोनों मुजफ्फरपुर में एक साथ पदस्थापित थे। मैं नगर निगम के प्रशासनक के रूप में और वह रेलवे के एसपी. के रूप में। दोनों की साहित्यिक रूचि होने के कारण साहित्यिक मंचों पर हमारी मुलाकात प्रायः होती रहती थी और हमारी प्रगाढ़ता बढ़ती रही थी। इसी का लाभ उठा एक दिन बद्री बाबू मेरे पटना के कार्यालय-कक्ष में पहुंचे और कहा, 'मैं अपनी पुस्तक 'अपराधिकी' का लोकार्पण कराना चाहता हूं।'

'किससे?' मैंने पूछा।

'दिनकर जी पटना आए हैं, उनसे मैंने बातें कर ली हैं। कल ही चार बजे 'प्रेस कौंसिल' के हॉल में समारोह आयोजित करना है अगर आपको कोई आपत्ति नहीं हो।'

मुझे क्या आपत्ति हो सकती थी? मेरा मन तो हर्ष से पूरित हो उठा कि बहुत दिनों की आकांक्षा आज पूरी होने जा रही है। अकादमी के निदेशक होने के कारण मैं समारोह में उपस्थित रहूंगा ही और कुछ नहीं तो अपने प्रिय कवि को समीप से देखने का अवसर तो मिलेगा।

'एक बात और है।' मैं विचारों में खोया था कि बद्री बाबू बोल उठे।

'क्या?'

'इस लोकार्पण-समारोह की अध्यक्षता आपको ही करनी है।' बद्री बाबू बोले और मेरे पैर के नीचे से जमीन खिसक गई। मैं और दिनकर के मुख्यअतिथित्व से सम्बन्धित समारोह की अध्यक्षता करूं?

मैंने बद्री बाबू से अनुरोध किया, 'मैं समारोह में उपस्थित अवश्य रहूंगा पर अध्यक्ष आप किसी और को चुन लें। महाकवि दिनकर लोकार्पण करें और मैं अध्यक्षता करूं' यह बात समझ में नहीं आती।

'इसमें आपत्ति क्या है? आप अकादमी के निदेशक होने के अतिरिक्त एक स्थापित साहित्यकार भी हैं। आपकी रचनाएं देश के स्तरीय पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित होती हैं। अब तक के चार कहानी-संग्रह दिल्ली के प्रतिष्ठित प्रकाशकों द्वारा प्रकाशित हो चुके हैं। आप इस समारोह की अध्यक्षता करने के सर्वथा योग्य हैं।' बद्री बाबू ने जोर दिया।

'और हमारी उम्र? दिनकर मेरे पिता की उम्र से भी बड़े होंगे कि नहीं?' मैंने कहा।

'आप उम्र के पचड़े में नहीं पड़ें। दिनकर बड़े ही उदारदिल हैं। आपके नाम से परिचित नहीं होंगे यह बात भी नहीं। आपकी अध्यक्षता का वह कदापि बुरा नहीं मानेंगे।'

अन्ततः मुझे दूसरे दिन इस समारोह की अध्यक्षता करनी ही पड़ी। हम पहले से ही समारोह-स्थल पर उपस्थित थे। जब महाकवि के आगमन की सूचना मिली तो मैं और बद्री बाबू एक साथ उनके स्वागत के लिए पहुंचे। अब तक तो मैंने दिनकर को केवल पढ़ा था। उनके भव्य व्यक्तित्व को देखकर मैं आश्चर्यचकित रह गया। छः फुट से ज्यादा का भरापूरा गौरववर्णी शरीर। पोशाक के रूप में झकझक सफेद लम्बा कुर्ता एवं पाजामा। दोनों कंधों से लटकता दीर्घ अर्द्धरंगीन उत्तरीय। मैंने सोचा 'हिमालय' कविता का यशस्वी लेखक का विराट व्यक्तित्व सचमुच हिमालय की तरह ही है।

कार्यक्रम आरंभ हुआ। मैं अध्यक्ष के रूप में मुख्य अतिथि राष्ट्र कवि दिनकर के पार्श्व में मंच पर बैठा अपने में सिकुड़ा जा रहा था। तभी बद्री बाबू ने 'माइक' से प्रमुख अतिथियों का परिचय दिया। मेरा नाम सुनते ही दिनकर जी मेरी ओर मुड़े और धीरे से बोले, 'अच्छा तो आप भगवतीशरण मिश्र हैं। मैंने आपको पढ़ा है। बिहार सरकार ने अकादमी के लिए उचित निदेशक का चुनाव किया है।'

मैं क्या उत्तर देता? दोनों हाथ जोड़कर मैंने उनका साधुवाद किया। लोकार्पण-समारोह के अन्त में मेरा अध्यक्षीय भाषण भी हुआ। चाय-पानी के टेबल पर भी हम दोनों अगल-बगल बैठे। दिनकर जी बोल पड़े, 'आप जितने अच्छे लेखक हैं उससे कम अच्छे वक्ता नहीं हैं। आपको हिन्दी के साथ-साथ संस्कृत और बंगला पर भी पूर्ण अधिकार प्राप्त है। ऐसे ही व्यक्तियों को साहित्य के क्षेत्र में आना चाहिए। आपसे मिलकर मुझे सचमुच प्रसन्नता हुई।'

मैं उनकी बात पर जैसे जमीन में गड़ गया। अन्ततः सकुचाते हुए बोला, 'आपके समक्ष मैं क्या हूं? आप हिन्दी साहित्य-गगन के दिनकर हैं, हम तो धरती के एक जुगनू भी नहीं। आप मुझे अपने आशीर्वाद से धन्य कीजिए जिससे मैं वाग्देवी के चरणों में अपने कुछ तुच्छ पुष्प भेंट कर सकूं।' इस पर दिनकर जी जो बोले वह आज तक मुझे पूरी तरह स्मरण है-

'मिश्र जी! निश्चय ही आप मेरे पुत्र की उम्र के हैं। मैं आपको एक परामर्श देना चाहूंगा। न तो अपनी कृतियों को न अपने को कभी तुच्छ समझें। पूरी निष्ठा एवं साहस के साथ साहित्य-सेवा में लगे रहें, एक न एक दिन आप भी अपने को सफलता के शिखर पर स्थापित पाइएगा।'

दिनकर जी बहुत पहले स्वर्गीय हो गए। साहित्य के क्षेत्र में मैं कहां पहुंचा यह तो मैं नहीं जानता लेकिन राष्ट्रकवि के स्वर अब भी मेरे कानों में गूंज रहे हैं और मुझे शिखर तक पहुंचने की प्रेरणा से उत्प्रेरित कर रहे हैं। ●

बेगूसराय और राष्ट्र के साहित्य-गगन के प्रखर नक्षत्र आचार्य कुमुद विद्यालंकार

डॉ.भगवतीशरण मिश्र

बेगूसराय की धरती रत्नगर्भा रही है। इसने एक-से-एक रत्नों को प्रसूत किया है । कुछ तो महाकाल के द्वारा विस्मृत कर दिए गए, कुछ अर्द्धविस्मृत अवस्था में हैं और कुछ ऐसे भी हैं जो समय की शिला पर अपने हस्ताक्षर को अमिट कर गए हैं।

मैं यहां दो प्रायः अर्द्धविस्मृत हस्तियों का संक्षिप्त विवरण दे रहा हूं। ऐसा नहीं कि इन दोनों की अर्द्धविस्मृति के मूल में जनता या पाठक हैं अपितु ये स्वयं हैं क्योंकि इन्होंने प्रचार-प्रसार से अपने को सदा दूर रखा। प्रतिष्ठा इन्हें प्रिय नहीं थी। कर्म प्रिय था। ऐसे भी संस्कृत में उक्ति है--

'प्रतिष्ठा शूकरि विष्टा'।

--प्रतिष्ठा सूअर की विष्टा की तरह है। हमारे प्राचीन ऋषि-महर्षि प्रतिष्ठा में विश्वास नहीं करते थे। यही कारण है कि बहुतों ने अपने ग्रन्थों पर अपना नाम भी नहीं लिखा। न लिखने दिया। कई ऐसे उपनिषद् हैं जिनके लेखक का पता नहीं। कई ऐसे पुराण हैं जिनके रचयिता का नाम नहीं।

ये दोनों ऋषि-परम्परा के ही व्यक्ति हैं। इन्होंने किया बहुत कुछ लेकिन न स्वयं उनका प्रचार किया, न दूसरों को करने दिया। आज तो मीडिया के पीछे लोग दौड़ते हैं। इन लोगों ने मीडिया को ही अपने दरवाज़े से बाहर का रास्ता दिखाया। ऐसी स्थिति में अगर ये विस्मृति के गर्त में जा पहुंचे तो इसमें आश्चर्य क्या ? किन्तु कुछ आज भी ऐसे लोग हैं जो स्वयं के नहीं दूसरों के उपकार में विश्वास करते हैं--'परोपकाराय सतां विभूतयः।'

ऐसे ही लोगों में एक व्यक्ति श्री अदीलुर रहमान आज़ाद (ए.आर.आज़ाद) हैं। सम्प्रति ये 'दूसरा मत' के सम्पादक हैं। इन्होंने इन विस्मृत हो रहे रत्नों को आम लोगों के समक्ष लाने का अतुलनीय प्रयास किया है। इनमें दो के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

प्रथम हैं आचार्य कुमुद विद्यालंकार। बेगूसराय की धरती ने इन्हें 1911 ई.में इस संसार को सौंप दिया। बेगूसराय नगर के पास बेहटा नामक एक प्रसिद्ध स्थान है जिसके ममारखपुर ग्राम में इनका जन्म हुआ था। इनके पिता का नाम खंतर सिंह था। खंतर सिंह इलाके के नामी-गरामी व्यक्ति थे। इस क्षेत्र में इनका बोलवाला था। बेहटा में ऐसे भी कई समृद्ध लोग हो चुके हैं और अब भी हैं। ठाकुर परिवार के होने के नाते हमारे चरित्र-नायक का नाम पड़ा कुमार बदरीनारायण सिंह। यह ज्ञात कर आश्चर्य हो सकता है कि ऐसे सम्भ्रांत परिवार में जन्म ग्रहण करने के पश्चात् भी कुमुद विद्यालंकार पांचवी कक्षा से ऊपर नहीं पढ़ सके। इससे भी आश्चर्य की बात यह है कि नाम मात्र की पढ़ाई के पश्चात् भी इन्होंने अपने स्वाध्याय के बल पर इतना कुछ पढ़ा कि बड़े-बड़े विद्वान् इनके सामने पानी भरें।

इनकी विद्वता एवं रचनाधर्मिता के कई आयाम हैं। इन्होंने पत्रकारिता भी की और उच्च कोटि की की। इन्होंने ग्रन्थ भी लिखे और ऐसे ग्रन्थ जो एम ए कक्षाओं के पाठ्क्रमों में स्वीकृत हुए और कई वर्षों तक पढ़ाए जाते रहे। यह कुछ कम विस्मय की बात नहीं है कि जिस व्यक्ति ने मात्र प्राइमरी तक की पढ़ाई पूरी की उसकी पुस्तकें एम ए के छात्रों को पढ़ाई जाएं।

कुमुद विद्यालंकाल बचपन से ही अत्यन्त मेधावी छात्र थे। इनके प्राइमरी स्कूल से बाहर होने का कारण भी इनकी मेधा-शक्ति ही है। उस समय वे तेघड़ा नामक ग्राम के स्कूल में पढ़ाई कर रहे थे। हिन्दी के शिक्षक किसी पद्य का अर्थ बता रहे थे। कुमुद विद्यालंकार को लगा कि यह अर्थ गलत हैं और उन्होंने खड़े होकर अपना विचार प्रकट कर दिया। शिक्षक ने अपने को अपमानित समझ कर इनकी भरपूर पिटाई की। बात प्रधानाध्यापक तक पहुंची। वे और अन्य कई शिक्षक कक्षा में उपस्थित हो गए। सभी ने यह माना कि कुमुद जी ही सही थे और शिक्षक का अर्थ वस्तुतः ग़लत था।

इसी घटना के पश्चात् कुमुद जी ने प्रतिज्ञा कर ली कि वे अब किसी भी स्कूल-कॉलेज की पढ़ाई नहीं करेंगे। इन्होंने घर पर ही स्वाध्याय आरम्भ किया और अपने परिवार को आश्वस्त किया कि स्कूल-कॉलेज नहीं जा कर भी वे परिवार के नाम को उज्ज्वल करेंगे और उन्होंने अपनी इस प्रतिज्ञा को पूर्ण कर दिखाया।

उस समय स्वतंत्रता की लहर चल रही थी। विस्मय की बात है कि राजधानी पटना की बात तो अलग जिला मुख्यालय से भी प्रायः 26 किलोमीटर की दूरी पर स्थित एक गांव में रहने

वाले कुमुद जी, जिनकी उम्र अभी दस-बारह वर्ष की ही होगी, के हृदय में स्वतंत्रता की ज्वाला कैसे जल पड़ी? लेकिन जली तो ख़ूब जली। स्वाध्याय का ऐसा प्रभाव शायद ही कहीं देखने को मिले। मात्र तेरह वर्ष की किशोरावस्था में कुमुद जी संपादक बन गए और उन्होंने 'चिनगारी' नामक पत्रिका का संपादन आरंभ किया। यह पत्रिका स्वभावतः अंग्रेज़ी सरकार के विरोध में चिनगारी ही क्या आग की लपटें उगलती थी। भला यह बात अंग्रेज़ों को कैसे पसंद आए? ज़िले के मजिस्ट्रेट की निगाह इस पत्रिका और इसके संपादक पर गड़ गई। इस अधिकारी का नाम था 'वाल्स'। चिनगारी के प्रथम पृष्ठ पर ही वाल्स के विरूद्ध तेरह वर्षीय सम्पादक महोदय आग उगलते थे-

वाल्स आज रोको कुकर्म निज-
बनो न यों अत्याचारी।
करो न अय्यर के कामों की-
पुनरावृत्ति की तैयारी॥

यह पत्रिका प्रायः एक वर्ष तक निकल सकी। संपादक पकड़ में नहीं आ रहे थे, लेकिन एक दिन जब वे किसी मित्र से मिलने गए थे तो किसी अपने ने ही पुलिस को इसकी सूचना दे दी और कुमुद विद्यालंकार जेल के सीकचों के पीछे चले गए।

वाल्स को आंतरिक शान्ति मिली लेकिन उसकी प्रसन्नता बहुत दिनों तक क़ायम नहीं रही। इसी मध्य एक सरकारी फरमान निकला कि 18 वर्ष से कम उम्र के कै़दियों को तत्काल रिहा कर दिया जाए और कुमुद जी जेल से बाहर आ गए।

कुमुद विद्यालंकार ने इस तथ्य को समझ लिया था कि तलवार से अधिक क़लम में ताक़त होती है। उनके जेल-जीवन ने उन्हें हतोत्साहित करने के बदले दृढ़निश्चयी बना दिया और उन्होंने प्रण कर लिया कि वे चिनगारी से अच्छी पत्र-पत्रिकाओं का संपादन कर स्वतंत्रता की लड़ाई में अपना योगदान देंगे। इसके लिए अब बेगूसराय की धरती बहुत छोटी पड़ती थी और हमारे चरित्र नायक ने उसे छोड़ दिया। जीवन के एक लम्बे काल तक वे बेगूसराय से बाहर ही रहे। उनकी गुमनामी का एक कारण उनकी यह यायावरी भी रही। वे सर्वप्रथम कलकत्ता पहुंचे। वहां उन्होंने 'क्षत्रिय' तथा 'नया समाज' का संपादन आरम्भ किया। इसमें पर्याप्त सफलता मिलने के पश्चात् उन्होंने हिन्दी प्रदेश की ओर मुख किया और आगरा पहुंचे। आगरा में इनके जीवन का एक दीर्घ अंतराल व्यतीत हुआ। वह अकर्मण्यतापूर्ण नहीं था बल्कि इन्होंने आगरा से कई पत्रों का सफलतापूर्वक संपादन किया।

इन पत्रों में प्रमुख हैं-'साहित्य संदेश', 'नौनिहाल', 'नवसंदेश', 'हितैशी' आदि। आगरा के पश्चात् इन्होंने दिल्ली की ओर प्रस्थान किया किन्तु बीच में कुछ वर्षों तक मेरठ में रूक कर इन्होंने 'संघर्ष' नामक पत्रिका का संपादन किया। दिल्ली आने पर तो इनके कार्य-क्षेत्र का दायरा बहुत बढ़ गया। स्वतंत्रता आंदोलन के सभी बड़े सूत्रधार तो यहीं थे। कइयों से इनका परिचय हुआ। स्वतंत्रता-संग्राम में इन्होंने जी खोल कर भाग लिया। इनका हथियार फिर भी क़लम ही रही और इन्होंने दिल्ली से कई पत्र-पत्रिकाओं का सम्पादन किया। इनमें प्रसिद्ध हैं--'गांधीवाद', 'भविष्य', 'विद्यार्थी-संदेश' आदि।

स्पष्ट है कि आचार्य कुमुद ने नई पीढ़ी को भी झकझोरने का कम प्रयास नहीं किया। विद्यार्थियों में स्वतंत्रता के प्रति जागृति लाने में उनकी भूमिका सराहनीय रही। यह सब उनके प्रकाशन 'नौनिहाल', 'विद्यार्थी-सन्देश' आदि पत्रिकाओं से स्पष्ट होता है। दिल्ली में रहते हुए आचार्य जी को कई ऐसे अवसर मिले जिसे कोई भी प्राप्त कर अपने को गौरवान्वित अनुभव कर सकता था। प्राइमरी स्कूल तक पढ़े होने के बावजूद वे दिल्ली के रामजस कॉलेज में हिन्दी के प्राध्यापक बने लेकिन वे यश-प्रतिष्ठा-प्राप्ति की ओर कभी नहीं बढ़े। इसका सबसे अच्छा उदाहरण यह है कि जिस समय कुमुद जी दिल्ली में थे, उस समय बिहार के ही सत्यनारायण सिन्हा केन्द्र में संसदीय विभाग के मंत्री थे। उन्होंने बहुत चाहा कि कुमुद जी उनकी राजनीतिक शक्ति से कुछ लाभ उठाएं किन्तु उन्होंने कभी ऐसा नहीं किया। अन्ततः सत्यनारायण बाबू ने उनसे बिना पूछे उन्हें आकाशवाणी दिल्ली के उपनिदेशक पद पर स्थापित कर उन्हें नियुक्ति-पत्र प्रदान कर दिया। कुमुद जी ने इस पद को भी ठुकरा दिया। उनका मानना था कि वे सरकारी मुलाज़िम बन कर अपनी निजी स्वतंत्रता नहीं खो सकते। लगता है कि सत्यनारायण बाबू की उदारता से ही तंग आकर कुमुद जी ने बारह वर्षों तक दिल्ली में रहने के पश्चात् उसे छोड़ दिया और अपने राज्य की राजधानी पटना लौट आए।

अब आचार्य जी के साहित्य-सृजन की बात करनी होगी। उन्होंने कविताएं अधिक लिखीं। वे एक जन्मजात एवं आशु कवि थे। उस समय छायावाद और रहस्यवाद का हिन्दी-कविता पर पूरा प्रभाव था। विभिन्न राष्ट्रीय स्तर की पत्र-पत्रिकाओं में इनकी कविताएं प्रकाशित होती रहीं। इन्होंने महाकाव्य, कई खण्ड-काव्य एवं प्रबन्ध-काव्य के साथ-साथ कई कविता-संग्रहों को भी हिन्दी-पाठकों को समर्पित किया। इनकी प्रसिद्ध कृतियां हैं--'तथागत' (महाकाव्य), 'राजर्षिनिमि' (खण्ड-काव्य), 'नहुष' (प्रबन्ध-काव्य), 'यशोदा' (प्रबन्ध-काव्य), 'आहुति' (कविता-संग्रह), 'संगम' (कविता-संग्रह), 'निर्माण' (कविता-संग्रह)।

इनकी एक प्रसिद्ध समीक्षा-पुस्तक 'विद्यापति की पदावली' भी बहुत लोकप्रिय हुई। 'तथागत' एवं 'विद्यापति की पदावली' कई विश्वविद्यालयों के एम ए के पाठक्रमों में पढ़ाए जाते रहे।

ये सभी पुस्तकें पर्याप्त व्याख्या की अधिकारिणी हैं किन्तु स्थानाभाव के कारण यहां केवल उनके महाकाव्य 'तथागत' पर विस्तार से विचार किया जाएगा। पाठकों से अनुरोध है कि वे इस आलेख से प्रेरणा लेकर उनकी शेष पुस्तकों का भी अध्ययन अवश्य करें।

'तथागत'-यह एक महाकाव्य प्रबन्ध हैं। नाम से ही स्पष्ट है कि यह महात्मा बुद्ध पर आधृत है। कोई 150 पृष्ठों में कवि ने 'तथागत' की कथा को छन्दबद्ध काव्य में बांधने का सफल प्रयास किया है। यह बताना आवश्यक है कि यह बुद्ध की पूरी विस्तृत कथा नहीं है। इसमें कुछ विशेष घटनाओं पर बल दिया गया है। एक तरह से यह तथागत से बुद्ध बनने की कथा की भूमिका मानी जा सकती।

इसमें 'अभिनिष्क्रमण' का विस्तृत और हृदयस्पर्शी वर्णन है तो पुत्र राहुल और पत्नी यशोधरा से पृथक् होने की भाव-कथा भी है यह कीर्ति। सुजाता भी अपने पायस के साथ यहां उपस्थित मिलेगी। बोधिसत्य बन जाने और बुद्धत्व प्राप्त करने के पश्चात् की जटिल और दीर्घ गाथा

से कवि ने इस लघु काव्य कृति में अपने को पृथक् रखा है। यह छोटे-छोटे कई सर्गों में बटी हुई है।

गौतम के घर छोड़ने के संबंध में जो कथाएं प्रसिद्ध हैं। उनको बड़े मोहक रूप में कवि ने यहां प्रस्तुत किया है। ख्यात है कि सिद्धार्थ जब रथ पर सवार हो एक दिन भ्रमण को निकले थे तो उन्होंने कुछ दृश्य देखे थे जिनके कारण उनको संसार से विरक्ति हो गई और उन्होंने राजमहल की सुख-सुविधाओं का त्याग कर ज्ञान के अन्वेषण में अपने को अर्पित कर दिया। अब ज़रा एक वृद्ध के दर्शन को किस रूप में कवि ने प्रस्तुत किया है यह देखें-

सारथि, रथ को रुक जाने दो
दर्शित दृश्य बदलते हैं
स्वप्न-सत्य क्या कहूँ इन्हें मैं?
यह तो मुझको छलते हैं।

शैशव पर यौवन का शासन
देखा मनहारी होता
किन्तु बताओ निर्बल मानव
जरा-गोद में क्यों रोता?

वृद्ध को धीरे-धीरे लकुटी के सहारे आते हुए देख कर सिद्धार्थ सारथि से पुनः पूछते हैं-

कौन पुरूष आता वह, सम्मुख
गति की क्षीण निशानी बन?
लकुटी ही जिसका सम्बल है,
जो जी रहा कहानी बन!

यह बिकार है या कि प्रकृति है
या कि मात्र संयोग क्षणिक?
सारथि, बोलो तुम चुप क्यों हो
क्या यह शक्ति-वियोग क्षणिक?

सिद्धार्थ की उत्सुकता यहीं नहीं रूकती। वह सोचते हैं यह जरा (बुढ़ापा) क्या संसार में सबको आ घेरती है? वह सारथि से पुनः पूछ बैठते हैं-

'जरा-जरा शासन करती क्या
जग में सबके ही ऊपर?
कोई इससे बच सकता क्या
ले पार्थिव काया भू पर?'

प्रश्न-चिह्न पर प्रश्न-चिह्न है,
यन्ता समाधान क्या दे!
नहीं ज्ञान-रथ का वाहन वह
फिर अनुमान-दान क्या दे!

सारथि ठीक ही ऐसा ज्ञानवान नहीं है कि वह सिद्धार्थ के प्रश्नों का समुचित उत्तर दे सके। फिर भी वह कहता है कि जरा की छाया सभी प्रणियों पर पड़ती है। कालचक्र सभी को घूमा रहा है फिर भी आपको इसकी चिन्ता क्यों हैं? आपतो यौवन-सम्पन्न हैं। व्यर्थ की व्यथा नहीं पालिए-

'राजकुमार, जरा की छाया
सभी प्राणियों पर पड़ती
नहीं बचा कोई भी उससे,
उसका राज्य अखिल धरती'

बोला सविनय-'काल-चक्र में
प्राणि-मात्र है यहां विवश
फिर भी क्यों करते कुमार मन
आस्वादन असमय कटु रस?

वह तापित है जरा-ताप से,
लगी उसे वय की ज्वाला
प्राप्य तुम्हें है निखरा यौवन,
दें को दूर व्यथा-माला'

सिद्धार्थ कहते हैं कि यह संभव कैसे है? इस पर तो चिन्तन करना ही पड़ेगा। चारो तरफ तो इन्द्रजाल ही दिख रहा है। सभी अज्ञान से ग्रसित हैं। कोई उपाय ढूंढ़ने को प्रस्तुत नहीं।

यहीं आचार्य कुमुद पाठकों का ध्यान इस बात की ओर आकृष्ट कर देते हैं कि राजकुमार का लक्ष्य ज्ञान-प्राप्ति है। इसी समय उन्हें एक मृत व्यक्ति लोगों द्वारा 'रंथी' पर चढ़ा कर ले जाते दिख पड़ता है। कई लोग उसके साथ रोते हुए गमन कर रहे हैं। उन्हें लग जाता है कि जीवन शाश्वत नहीं है। लोग व्यर्थ में अपनी आशा का घर बनाते और मिटाते रहते हैं। साथ तो कुछ जाता है नहीं। वह सारथि से बोल पड़ते हैं-

माना यहां जरा का शासन
किन्तु कठिन रुज-कन्दन क्यों?
यहीं पार्श्व में रन्थी-रथ पर
करूण मृत्यु-अभिवन्दन क्यों?

सुलभ न निरूज-सबल काया है,
शाश्वत प्राण न प्राणी का
तो जगती में अपना क्या है
जगती के अभिमानी का?

नित्य बनाता आशा का घर
फिर वह नित्य मिटाता है
मानव इस पर नहीं सोचता
साथ न कुछ ले जाता है

इन सब दृश्यों के अवलोकन के पश्चात् राजकुमार सारथि को आदेश देते हैं कि वह रथ को लौटा ले चले। उन्हें नहीं देखना और कुछ। उन्हें एक-एक पल भारी लग रहा है। वह लौट आते हैं और उनका मन वैराग्य से भर जाता है। पत्नी यशोधरा और पुत्र राहुल का प्रेम अब उन्हें बांध नहीं पाता। महल और वैभव उन्हें अब नहीं सुहाते। कवि के शब्दों में-

वही महल है, वही विभव है,
वही सुलभ सब सुख साधन
नहीं अभाव कहीं जीवन में,
फिर भी हैं वह नत-आनन

यशोधरा का स्नेह-पाश भी
उन्हें न आकर्षित करता
शिशु राहुल का अधर-कमल भी
उन में नहीं पुलक भरता

अन्ततः बहुत चिन्तन मनन के पश्चात् वह महल छोड़ने का निर्णय लेते हैं। मोह का बंधन बहुत आसान नहीं है। वह किसी तरह उसे काट पाते हैं और एक रात्रि जब पत्नी यशोधरा और पुत्र राहुल निद्रा की गोद में होते हैं, वे महल से अपनी अनन्त यात्रा पर निकल जाते हैं। इस दृश्य का वर्णन कवि ने बड़े मार्मिक शब्दों में किया है-

जहां वेदना करूण दृगों में बन्दिनि बन रहती है
जहां धरिणि भी तपी व्योम के तापों को सहती है
वहां नहीं सिद्धार्थ - आचरण, तुम्हें पड़ेगा भारी
जाता हूं, दो मौन विदाई, प्रिये, आज लाचारी''

इस तरह सुयुक्त पत्नी और पुत्र से पृथक् होकर

वह महल से बाहर हो जाते हैं। इस दृश्य का वर्णन कवि के शब्दों में--

गति चरणों में, लिये दृगों में दुख-वियोग की रेखा
महाप्राण ने स्नेह कक्ष से निज को बाहर देखा
अनुचर विश्वासी छन्दक है, पथ-नेतृत्व करेगा
मानव के मंगल-मग में वह अन्तर-स्फूर्ति भरेगा

सिद्धार्थ के इस निष्क्रमण पर कवि-मन बोल उठता है। कपिल वस्तु को सिद्धार्थ ने छन्दक के साथ छोड़ा है। छन्दक ही इस राजकुमार का जिसने कपिलवस्तु के बाहर कभी पैर नहीं रखा पथ-प्रदर्शक है। कवि यह भी कहता है कि जो मन की गति और पवनवेग से चलने का इच्छुक है उसके लिए लक्ष्य कभी दूर नहीं होता। दुर्गम पथ भी उसके लिए सुगम बन जाता है-

'जय-निष्कमण पन्थ के पन्थी, जय सिद्धार्थ तुम्हारी
श्रद्धा की सांसें बोलीं-'जय कपिलपुरी मनहारी
जय छन्दक की, भृत्य-भाव में जिसका हृदय अटल है
जय छन्दक की, श्रद्धा का ही जिस को संचित बल है

जय है, जय पशु कन्थक की भी, जयी अश्व यशशाली
जय युग-पुरूष अनागत की, जिन में ऊषा की लाली'

मन की गति में, पवन-वेग में चलना जिनका क्रम है
लक्ष्य न उनके लिये दूर है, दुर्गम पन्थ सुगम है
नंगे पग बढ़ने वालों को, दुख देते कब कांटे
महा गरल बनता जीवन-रस, विस्मय, उनके बांटे

तथागत के गृह-त्याग के बाद नियति जैसे यशोधरा की तुलना कृष्ण की राधा से करती है जो आजीवन उनकी विरह में तपती रही। बड़े आकर्षक शब्दों में कवि ने इस तथ्य को पुस्तक के चौथे सर्ग 'अन्तःपुर' में अभिव्यक्ति दी है-

'विरहु-तापित राधा तुम कौन?
व्यथा का लिये हृदय पर भार
अभी तो हुई नहीं सम्पूर्ण
राग की चिरवांछित झनकार

मिलन की बीती पहली रात
हुआ वय का पहला श्रृंगार
निठुर वनमाली तुमको छोड़
गया किस ओर समेटे प्यार?

यशोधरा जब वास्तविकता से परिचित हुई तो नियति के इस विधान पर उसे दारूण कष्ट हुआ। उसे समझ में नहीं आ रहा था कि अब वह क्या करे, क्या नहीं करे उसे यह अनुमान लगाने में किंचित् भी विलम्ब नहीं हुआ कि उसका सब कुछ लुट गया। उसे अपना जीवन मरूभूमि के सदृश प्रतीत होने लगा जहां मात्र सूर्य की किरणें ज्वाला उगलती हैं और कहीं जल की एक बूंद भी दिखाई नहीं पड़ती। उसके मन के विशाद को आचार्य ने यह मार्मिक काव्याभिव्यक्ति प्रदान की है--

नियति का सुन कर दारुण व्यंग्य
कहे क्या यशोधरा दुख-लीन
उसे कुछ नहीं सूझता आज
सभी विधि हुई हाय, वह दीन?

देखती पल-पल पति की वाट
लुटी खोई निर्गत-आनन्द
बटोही, भरो न स्मृति की फूंक
आज कटु वंशी के मधु छन्द

लहर-दर्शन से आकुल प्राण
रूचेंगे कैसे मुझको गति?
स्वयं मैं हूं राधा - उपमान
दृगों में चलते स्वप्न अतीत

बीते हुए स्वप्न तो यशोधरा को सर्प के सदृश डंस रहे हैं लेकिन वर्तमान कितना कठोर है इसका भान उसी को है जिसको घाव नहीं हुआ हो उस्-ाको दूसरे की पीड़ा कैसे ज्ञात हो सकती है। शून्य महल में बैठी एकाकी यशोधरा के मन में क्या कुछ आ-जा रहा है उसका वर्णन कवि ने बड़े ही करूण रूप में किया है-

पड़ा है उल्टा जिसका दाँव
हुए रे, जिसके उर में घाव
न हो वह भला विकल किस भाँति
मिलन में जिसको मिला दुराव?

एक मैं, एक शून्य यह कक्ष
परस्पर चलता उर - सम्वाद
नहीं तुम डालो उनमें भेद
जगा कर प्रणय - घड़ी की याद

महावर से हैं चरण विहीन
नहीं दृग में कज्जल है शेष
योक्त से सूने आज उरोज
प्राण सह रहे मरण का क्लेश

यशोधरा सन्ताप-ग्रस्त हैं। सोचती है जीवन तो बहुत छोटा है उसमें यौवन तो और चार दिनों का। ऐसे में जीवन जंजाल बन जाता है। दुख के सागर का कोई किनारा नहीं दिखाई पड़ता है। वियोग में आंखें अन्धी हो जाती हैं। उनके आगे अधंकार के सिवा कुछ नहीं रहता है। कवि के शब्दों में-

आयु कब है जीवन का रूप
बहुत ही लघु है जीवन - काल
बिता कर यौवन के दिन चार
स्वयं जीवन बनता जंजाल

कहो मत, इस दुख - सागर-बीच
कभी आवेगा मनहर कूल
हुये दृग जो वियोग में अन्ध
महाचिति उनको बस तम-शूल

यशोधरा सोच रही है कि उससे ऐसा क्या दोष हुआ है कि पति उसे छोड़ कर चले गए। उसे उन्होंने केवल नारी समझा उसके हृदय को नहीं पहचाना। वह सोचती है कि जो भी हो एक दिन वह बंजारा लौटेगा तो अवश्य तब पता चलेगा कि उसका दोष क्या है? वह आज कोयल नहीं है जो मधु से मदमाती उड़ती चलती है। वह चकोरी है जो अंगारों को चूमती है-

नारी भर ही मुझको जाना,
मेरा हृदय नहीं पहिचाना,
थी उर्मिला, बहिन सीता की,
एक बार भी इसे न माना
नारि-त्याग में कभी त्याग के व्रती स्वयं सिहरेंगे!
मुझे प्रतीक्षा लगी रहेगी, दूर गया बनजारा!

जीवन है तो व्यथा रहेगी,
हतभागिनि की कथा रहेगी,
यशोधरा वह नारी है जो
उर-अविचल सर्वथा रहेगी
कभी उगेगा इसी व्योम में ज्योतिमान ध्रुव तारा!

कोयल वह मधु की मदमाती,
डाल-डाल पर उड़ती-गाती,
किन्तु चकोरी अंगारों से
अपना शाश्वत नेह निभाती

यशोधरा फिर भी आशा नहीं छोड़ती है। वह सोचती है कि स्वप्न भले मिटे हों उनकी परछाईं तो बनी रहे। ऐसे में एक-न-एक दिन उसकी आं-खें अपने प्रिय के दर्शन पा ही लेंगी और तब फिर पहले वाला प्रणय दोनों की आंखों में उतरेगा। सात द्वारों को पार कर भी एक दिन उसके प्रियतम लौटेंगे। भले ही वह उस समय को नहीं समझ सके जिसके कष्ट की आग में वह झुलसती रही है। दोनों के मिलन-दिवस को देख कर उस समय संसार भी हंस पड़ेगा। कवि ने क्या अच्छा रूपक बांधा है यहां--

स्वप्न मिटे तो मिटे, रहे बस
बची स्वप्न की परछाईं
कभी ढूंढ़ ही लेंगी तुमको
मेरी आंखें अकुलाईं
टेढ़ी-तिरछी रेखाओं में होंगे फिर विचित्र चितवन!

सात द्वार को लाँघ स्वयं ही
तुम मेरे ढिग आओगे
मिटा-मिटा कर आँक सकी क्या
चित्र देख वह पाओगे
बीते दिवसों की सुधि में भी हँस देगा उस घड़ी गगन!

लेकिन बनजारा रूकता कहां है। सिद्धार्थ आगे बढ़ते जाते हैं। वह चलते-चलते गंगा पार कर राजगृह के मार्ग पर बढ़ चलते हैं। नारी-नर-बच्चे सभी तथागत को देख-देख कर सोचते हैं कि यह कोई महान् देव-दूत आ गया। मगध के महाराज बिम्ब सागर को यह पता है कि कपिलवस्तु के नरेश का लड़का घर त्याग कर चुका है अतः हो सकता है यह वही हो--

मोह, वैभव - भोग का मन से हटा
और गंगा पार कर नव प्रात में
हैं तथागत राजगृह के मार्ग पर
बढ़ रहे अशान्त बढ़ते जा रहे

नारि-नर शिशु - बुद्ध लाखों नागरिक
देखते हैं रूप यौवन-तप-भरा
कौन भू पर देवदूत महान यह !
कौन भव में यह तपी कल्यान का!

भिक्षु का है वेश, छवि में राज-सुत
मगधपति भी देख मन में सोचते-
''पुत्र यह क्या शाक्य नृप का है वही
राज-सुख को छोड़ जो वन को भगा!

नृप बिम्बसार दूत भेज कर पता करते हैं कि सत्य क्या है। दूत आकर बतलाता है कि आपका अनुमान सही है। यह कपिलवस्तु नरेश का सुत तथागत ही है जो राज्य, महल, पुत्र, प्रिया सबका त्याग कर वन-वन भटक रहा है। बिम्बसार द्रवित हो जाते हैं और सिद्धार्थ से बोलते हैं कि तुम मेरा राज्य लेकर यहीं शासन करो, सुख करो। इस तरह मारे-मारे फिरने से कोई लाभ नहीं। शरीर को कष्ट देकर क्या मिलेगा? तथागत बिम्बसार को बहुत सोचने-समझने के बाद उचित उत्तर देते हैं जो कवि के शब्दों में ही प्रस्तुत है--

''पूज्य, चाहूंगा क्षमा मैं धृष्ट-उर
आज अपनी धारणाओं के लिये
स्वार्थ-लोलुप स्नेह से मुझको विरति
और सुख का भोग तो बस रोग है

क्यों नहीं मन में मनुज है सोचता
अन्त संग्रह का प्रलय है विश्व में
दे रहे हैं आप अपना राज्य-धन
किन्तु मुझको तो नहीं वह चाहिए

छोड़ कर ही मैं इन्हें आगे बढ़ा
आप कहते लौट फिर पीछे चलूँ
फिर पिऊँ प्याला वही सन्ताप का
एक लोहित दीप्ति भरलूँ प्राण में

राज्य-धन के मोह में मानव विकल
भूल जाता हित-अहित का ध्यान है

आज भी कुरु - भूमि में है चीखती
धर्मसुत की आत्मा पीड़ित - व्यथित

बिम्बसार इसका क्या उत्तर देते हैं? सच तो यह है कि बोधि वृक्ष के नीचे ज्ञान प्राप्त करने के पूर्व ही कुमुद जी जैसे तथागत में सारा ज्ञान भर देते हैं। संग्रह और त्याग, में पाप और पुण्य, में राग और वैराग, में भोग और रोग, में भेद वह बिम्बसार पर स्पष्ट कर देते हैं। तथागत की यह उक्ति जिसने बिम्बसार की अभिव्यक्ति पा कर कितनी मुखर हो उठी है यह अवलोकनीय है-

सोचिये, इस भ्रान्त भव-समुदाय में
संयतात्मा का कहां पर ठौर है !
मत्त मद में नर करेगा पाप ही
अन्यथा उसे नहीं सम्भाव्य कुछ

पाप का फल सोचिये फिर ध्यान दे
पाप दुर्गति - गेह है संसार में
प्राप्ति में तृष्णा, व्यथा है त्याग में
नग्न है यह रूप विषयानन्द का

जिस विभव के साथ भय रहता लगा
हैं सभी आपत्तियां जिसमें भरीं
वह विभव ही सत्य जीवन व्यंग्य है
उस विभव की कामना क्यों नर करे!

कुमुद जी इस पुस्तक में एक ऐतिहासिक गाथा को तो काव्य रूप देते ही हैं आज की स्थितियों का भी उल्लेख कर इस पुस्तक को अत्यन्त ही प्रासंगिक बना देते हैं। अकारण शोषण, भ्रष्टाचार आदि आज के काल का ही देन है। पिता-माता भी उपेक्षित हो जाते हैं। लोग दूसरों के हाथों संत्रस्त होते हैं किन्तु उनकी रक्षा के लिए कोई आगे नहीं बढ़ता। तथागत के छठे सर्ग सम्वर्त में कवि की यह उक्ति हमारे कथन को सिद्ध करती है। न जाने कैसी जड़ता, कैसे अन्धस्वार्थ में, कैसी कायरता ने उसे जकड़ लिया है--

अपहरण और शोषण का रूप प्रकट है
रे स्वार्थ-शीश पर ही नेतृत्व-मुकुट है
मिट्टी का कोई मोल नहीं करता है
शापित सोने पर हाय, विश्व मरता है

मां का आराधक भूला मां की भाषा

विस्तृत उसको युग-जीवन की परिभाषा
हरता यदि कोई स्वत्व किसी का जग में
पुरूषत्व नहीं आगे बढ़ता क्यों मग में!

क्यों नहीं टूटती मानव-मन की जड़ता !
व्यवधान कौन उसके निर्णय में पड़ता !
क्यों जान बूझ कर बनता वह अनजाना!
भाता उसको क्यों नहीं शौर्य दिखलाना !

कुमुद विद्यालंकार जी एक कवि ही नहीं, एक श्रेष्ठ दार्शनिक, एक श्रेष्ठ चिन्तक और एक आध्यात्मिक साधना से युक्त व्यक्ति के रूप में इस पुस्तक में प्रस्तुत होते हैं। इसका अनुभव हमें उनके पुस्तक के सातवें सर्ग 'जीवन दर्शन' में होता है। गौतम यहां अराड ऋषि के आश्रम में जाते हैं और इन दोनों के कथोपकथन से कवि का स्वयं का स्वाध्याय और जीवन-दर्शन पूरी तरह उभर कर सामने आते है। कवि की ये पंक्तियां दर्शनीय हैं-

मुनि अराड का पावन आश्रम
तो न आज क्यों धन्य बने?
शमधर्मी सिद्धार्थ - तथागत
जिस के अतिथि अनन्य बने

स्वागत - स्वर में मानव - श्रद्धा
करती आज ज्ञान - अर्चन
स्वागत स्वर में उर - जिज्ञासा
करती आज भाव - वन्दन-

''सौग्य, ज्ञात है मुझे, आप का
त्याग और उद्देश्य सुखद
रखकर वारि - कोष निज उर में
बन सकता कब कृपण जलद !

ऋषि अराड आगे कहते हैं कि हमारे यहां तो चौथेपन में वन जाने की परम्परा है। आप तो यौवन में ही सब कुछ छोड़ कर यहां तक कि राजमहल के वैभव-विलास को भी छोड़ कर बाहर निकल आए हैं। यह आप ही के सदृश किसी पूर्व जन्म के अपूर्व पुण्याचारी के लिए संभव है। मैं आपकी कितनी प्रशंसा करूं? इस पर तथागत बोल उठते हैं। कवि के शब्दों में ही-

कहा तथागत ने--'हे मुनिवर
मैं न सुयश का अधिकारी
मैं तो याचक ज्ञान-दान का,
जिज्ञासा मुझ को प्यारी

माँग रहा हूँ, मुझे दीजिये
अपने अनुभव का सम्बल
''मृत्यु - सरित को पार करेगा
कैसे यह मानव हत बल?''

तथागत का स्पष्ट उद्देश्य मृत्यु पर विजय प्राप्त करना है। वृद्ध और मृत को देख कर ही तो वह राजमहल से बाहर हुए थे। यहां भी वे ऋषि से मृत्यु-सागर को ही पार करने का उपाय पूछते हैं। भोले राजकुमार की समझ में अब तक यह तथ्य नहीं आया है कि जो यहां आया है वह जाएगा ही। मृत्यु को टालना कहां संभव है? ऋषि अराड इसी तथ्य को उन पर उजागर करते हैं और ाषि की उक्ति में कवि का अपना गहन-ज्ञान ही प्रदर्शित होता है। ये पंक्तियां उल्लेखनीय हैं--

मुनि अराड पल भर चुप रह कर
बोले स्नेह - सिक्त वाणी--
''सत्व प्रकृति है, जरा-मृत्यु भी
सत्व रूप है वरदानी

प्रकृति-तत्ववेत्ता निसर्ग में
पंच भूत बतलाते हैं
अहं, बुद्धि, अव्यक्त प्रकृति है
जुड़े सभी के नाते हैं

वाणी, इन्द्रिय, विषय और मन
हैं विकार संज्ञा धारी
जो इन को जानता वही-
क्षेत्रज्ञ विश्व में अविकारी

उपर्युक्त पंक्तियों से कवि का गीता-ज्ञान भी स्पष्ट होता है। आचार्य विद्यालंकार ने क्या कुछ नहीं

पढ़ा था यह कहना कठिन है। गीता के 15वें अध्याय में क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ की चर्चा है। बिना उसको पढ़े कवि अगर ऐसी चर्चा नहीं कर सकता था। इतना ही नहीं कवि ने कपिल दर्शन का भी अध्ययन किया है जो आगे की पंक्तियों से स्पष्ट होगा। जिनमें ा षि पूरी तरह स्पष्ट कर देते हैं कि जरा-मरण तो अनिवार्य है अर्थात् मृत्यु से मुक्ति नहीं--

श्रेष्ठ कपिल-दर्शन से मानव
यदि निज - प्राणों को सींचे
तो न कभी सम्भव है, उसको
अपनी ओर मृत्यु खींचे

लेता है जो जन्म, व्यक्त वह
जरा - मरण अपनाता है
जो इस से विपरीत, वही
अव्यक्त पुकारा जाता है

ऊपर की पंक्तियां गीता के दूसरे अध्याय के 27वें श्लोक का स्मरण कराती हैं। ये पंक्तियां इस प्र-ाकार हैं-

जातस्य हि ध्रुवो मृत्युर्ध्रुवं जन्म मृतस्य च।
तस्मादपरिहार्येऽर्थे न त्वं शोचितुमर्हसि॥

-जिसने जन्म लिया उसका मरना निश्चित है और जो मर गया उसका जन्म भी निश्चित है...।

तथागत एवं ऋषि अराड के वार्तालाप में कपिल-दर्शन गीता के दर्शन तो होते ही हैं उपनिषदों की भी यहां उपस्थिति प्राप्त होती है। ईशावास्योपनिषद् में विद्या और अविद्या का उल्लेख हुआ है। यहां भी हम अविद्या की चर्चा पाते हैं। उपनिषद् ने कहा है-

अधं तमः प्रविशन्ति ये अविद्यमुपासते।
-घोर अन्धकार में प्रवेश करते हैं वे जो अविद्या की उपासना करते हैं। यह घोर अन्धकार मृत्यु के और सिवा क्या है? पुस्तक की निम्निलिखित पंक्तियां कवि के उपनिषद ज्ञान को स्पष्ट करती हैं-

''यहां अविद्या की गाँठों में
चेतनता है बँधी विवश
करता है आलस्य रात-दिन
कटु से कटुतर जीवन-रस''

''जन्म - मृत्यु का मोह, काम के
महामोह से जब मिलता
तब ज्ञान का दृढ़ आसन भी
वात - चक्र में रे, हिलता''

''जन्म - मरण का कारण जग में
विकट अविद्या बनती है
द्रष्टा, चिंतक, साधक की मति
इसी कीच में सनती है''

जो हो तथागत ऋषि अराड के कथन से बहुत प्रभावित नहीं होते हैं और सोचते हैं कि उन्हें स्वयं की साधना से ही ज्ञान प्राप्त करना होगा। बिना साधना के कुछ संभव नहीं है, ऐसा अनुमान उन्हें होता है। वह निश्चित करते हैं कि वह कठिन साधना में रत होंगे। गीता में प्रतिपादित क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ भाव की ा षि द्वारा प्रस्तुत व्याख्या को वह नकार देते हैं--

''मुने, तथागत - निष्ठा में है
परित्यागी उर की सत्कृति
कभी नहीं क्षेत्रज्ञ - भाव में
टिक पायेगी यहां विरति''

''है मेरी धारणा प्रकृति से--
आवृत्त है क्षेत्रज्ञ सदा
गुण - स्वभाव की संगति में ही
आती मानव - ढिग विपदा''
.........।
.........।

''यदि क्षेत्रज्ञ - हृदय ज्ञाता तो
शेष जानना गेय उसे
और गेय के पास पहुंच कर
वह न रहेगा बिना फंसे''

अन्ततः तथागत ऋषि अराड से स्पष्ट कह देते हैं कि अब उन्हें चलने की आज्ञा मिले क्योंकि उन्हें आगे जाना है। मेरे मन की छलना अभी मिटी नहीं है। आप ने जो उपकरण बताए हैं उसने प्राणी का कल्याण नहीं हो सकता। इन आचरणों से कवि उसके मोह का अवसान नहीं हो सकता। ज्ञान भीख में नहीं मिलता है उसके लिए सतत साधना की आवश्यकता होती है।

''मुने, अनुज्ञा मिले गमन की
मुझ को आगे चलना है''
कहा तथागत ने विनीत उर--
''मिटी न मन की छलना है''

''इन उपकरणों से हो सकता
प्राणी का कल्याण नहीं
इन आचरणों से हो सकता
कभी मोह - अवसान नहीं

.............।
.............।

''ज्ञान मिलेगा नहीं भीख में
मुझ को ऐसा दिखलाता
सतत साधना में ही कोई
ज्ञान - विभव को है पाता''

तथागत आगे बढ़ते हैं और निरंजना तट पर पहुंच जाते हैं। यहां उन्हें बहुत आनन्द मिलता है और वह निश्चित करते हैं कि अब यहां से आगे नहीं बढ़ना है। यही रह कर शांत वातावरण में साधना करनी है। उरुवेला-स्थल पर वे कठिन साधना में रत हो जाते हैं। कवि इसी को इस प्रकार अभिव्यक्ति देता है--

''बढ़ता ही आया अब तक मैं
अब आगे क्या जाना है !
यह निरंजना - तट पावन है
तन को यहीं तपाना है !''

कोलाहल से हीन दिशायें
धूलि - विहीन व्योम - मंडल
इससे बढ़ कर कहां मिलेगा
कोई अन्य शान्ति का स्थल !

कौणिडन्य, तुम मार्ग - सखा हो,
चाह तुम्हारी भी शम की
उरुवेला में कठिन साधना
रहे नियम की, संयम की।

सुजाता और सुजाता की खीर से कौन परिचित नहीं। आठवें सर्ग में सुजाता का पदार्पण होता है। इसके पूर्व तथागत की दीर्घ साधना चलती है। एक आसन पर बैठ कर उपवास करते हुए ज्ञान-प्राप्ति का प्रयास चलता है। काया क्षीण हो जाती है। इसी मध्य सुजाता अपने पायस के साथ प्रकट होती है और उसे तथागत का यह कठोर व्रत अच्छा नहीं लगता। वह सोचती है कि उसे आने में विलम्ब हो गया। उसे कुछ और पहले आना चाहिए था। अब वह सिद्धार्थ की इस साधना को इस रूप में नहीं चलने देगी सिद्धार्थ माया के वशीभूत होकर काया से द्वेष पाल रहे हैं। उसे माया नहीं सुहाती। वह उनकी काया को कुष्ट कर आगे के मार्ग को प्रशस्त करना चाहती है। कवि सुजाता के शब्दों में स्पष्ट कहता है-

कैसा तप यह, कैसा है यह आराधन !
काया को खोकर कहां रहेगा जीवन !

मैं मूक रही क्यों अब तक हाय, विधाता !
देखेगी जीवित यह सब नहीं सुजाता !
कौंडन्य स्वयं खाता - पीता हंसता है
वह नहीं कभी उपवास - बीच फंसता है।

है उसकी तो मंडली जुड़ी मनभावन
भादव है उसका हरा न सूखा सावन
रे, चार - चार साथी भिक्षा लाते हैं
सब के सब ही आनन्द - गीत गाते हैं

हैं पाल रहे भगवान् द्वेष काया से
हैं पाल रहे भगवान् द्वेष माया से
मैं नहीं चाहती माया का हो मंगल
काया ही उनकी यहां मुझे प्रिय पल-पल

सुजाता निश्चय करती है कि इनके उपवास को तोड़ना है। वह विह्वल वाणी में उसने अनुरोध करती है कि वह अपने इस तप को समाप्त करें और अपनी काया को कष्टों में झोंक कर समाप्त नहीं करें। उनका स्थान यहां साधना-स्थलि पर नहीं अपितु वहां है जहां भव-बाधा से तापित लोग हैं, जहां अभिशप्त प्राणी हैं। देह की दुर्गति से ध्येय की प्राप्ति नहीं होती-

''त्राता, दृग - खोलो त्राण संभालो अपना
जग को धृति दो, हो पूर्ण युगों का सपना
दाता, समझो कुछ मूल्य आज तुम जन का
आंको गरिमा तुम आज अश्रु - क्रन्दन का

है क्षेत्र तुम्हारा वहां, जहां हैं तापित
है क्षेत्र तुम्हारा वहां, जहां अभिशापित
आवेगा आगत उसे स्वयं आने दो !
काया को मत कष्टों में लुट जाने दो!

अन्योन्याश्रय हैं काय - प्राण संसृति में।
है नहीं ध्येय की प्राप्ति देह - दुर्गति में।''
+++ +++
तथागत सुजाता के तर्क से मन-ही-मन सहमत होते हैं। सोचते हैं सत्य है कि शरीर आवश्यक है। काया नहीं रहे तो धर्म किधर से हो? संस्कृत में ठीक ही कहा गया है-

धर्मार्थकाममोक्षाणां प्राणाः संस्थति हेतवः
-धर्म, अर्थ और काम की प्राप्ति के लिए प्राणों अर्थात् शरीर की रक्षा आवश्यक है। यही बात सिद्धार्थ के मन में भी उत्पन्न होती है। वह सोचते हैं कि जिसका शरीर स्वस्थ है उसी का मन भी स्वस्थ होगा। तन और मन अगर व्याकुल हों तो सारा चिन्तन व्यर्थ है। ऐसे में यहां भी क्यों दुविधा होती है। यहां की अभिव्यक्ति मन को बांधने वाली है-

है सत्य कि काया - हीन धर्म दुष्कर है
है सत्य कि काया - ही कर्म दुष्कर है
दुर्बल प्राणों से श्रेय दूर रहता है
दुर्बल मानव से ध्येय दूर रहता है

मन भी उसका ही स्वस्थ, स्वस्थ जिसका तन
व्याकुल तन -मन का निष्फल जग में चिन्तन
क्यों द्विधा यहां भी साथ नहीं है तजती
क्यों द्विधा यहां भी आकर उर से लगती

वह आगे सोचते हैं घर में यशोधरा स्नेह लुटाती रही। यहां जंगल की सुजाता श्रद्धा हठ पर उतर आई है। यह अपना अपेक्षित अनुराग लिए बिना रहेगी नहीं। इसका अनुरोध मैं टाल भी नहीं सकता हूं। इसके आहार अर्थात् उसके द्वारा लायी खीर को खाकर देह का पालन करूंगा। भूख-प्यास से विकल और पस्त हृदय से खाक चिन्तन होगा? समाधि की सिद्धि स्वस्थ मन से ही होगी और चिन्तन की वृद्धि स्वस्थ तन से ही संभव है--

गृह की यशोधरा रही स्नेह में कातर
है वन्य सुजाता श्रद्धा - हठ में तत्पर
लेकर मानेगी यह अनुराग - अपेक्षित
उसको तो मुझ से मिला त्याग-अनपेक्षत
इसका आत्मिक अनुरोध मैं न टालूंगा
लेकर इसका ? आहार देह - पालूंगा
जो भूख-प्यास से ग्रस्त विकल अन्तर है
उसके चिन्तन का क्षेत्र इरण - ऊसर है

होगी समाधि की सिद्धि स्वस्थ मन से ही
होगी चिन्तन की वृद्धि स्वस्थ तन से ही''

ऐसा कुछ सोच कर सिद्धार्थ अन्ततः सुजाता को धैर्य दे ही बैठे और कहा कि तुम्हारी अभिलाषा पूरी हो। वह आगे बोलते हैं स्त्री के हृदय का प्रेम पुरूष भले त्यागे किन्तु उसकी श्रद्धा के आगे उसे झुकना ही पड़ता है। तुम्हारा नैवेद्य मेरा सम्बल बनेगा। मेरे शुभचिन्तन को वह बल देखा। मनुष्य के तप का जब इतिहास लिखा जाएगा तो उसमें नारी-श्रृद्धा को विस्मृत नहीं किया जा सकेगा--

''भद्रे, पूरी अभिलाष तुम्हारी हो ले!''

'नारी - अन्तर का स्नेह भले नर त्यागे
नत है फिर भी वह नारी -श्रद्धा - आगे
नैवेद्य तुम्हारा होगा ममहित सम्बल
शुभ के चिन्तन में देगा मुझको वह बल

नर के तप का जब वृत्त लिखा जावेगा
नारी - श्रद्धा को हृदय न बिसरावेगा।

हुआ वही जो सुजाता और उसके पश्चात् सिद्धार्थ ने सोचा था। सुजाता का पावस रंग दिखाने लगा। साथ ही सिद्धार्थ ने सोचा कि बीच का रास्ता ही सर्वश्रेष्ठ है। अति हर क्षेत्र में वर्जित है। संस्कृत के एक कथन के अनुसार भी अति सर्वत्र वर्जित है। अगले सर्ग में सिद्धार्थ जब तन मन से पूरी तरह स्वस्थ हो जाते हैं तो उन्हें वास्तविक ज्ञान प्राप्त हो जाता है। बौद्ध धर्म में इसीलिए 'मझिझम निकाय' की बात आती है। सिद्धार्थ अब बुद्ध बन जाते हैं--बोधिसत्य। उनके अनुसार चंचल मन ही मनुष्य के भटकाव के मूल में है-

मन की चंचलता भटकाती
मानव को शुभ - चिन्तन से
बोधिसत्व का ज्ञान--''स्वयं ही
मानव उलझा बन्धन से

ज्ञान-प्राप्ति के पश्चात् अर्थात् बुद्ध बनने के पश्चात् वे कपिलवस्तु जाते हैं जहां उन्हें पिता-माता और पत्नी सबकी उलाहना का सामना करना पड़ता है। अन्ततः सभी स्थिति से समझौता कर लेते हैं। इतना ही नहीं पत्नी यशोधरा, पुत्र राहुल को उन्हें सौंप देती है कि अब इसे भी अपने मार्ग पर ही चलाइए। मैं आपकी दाय को अपने पास क्यों रखूं? राहुल तुम्हारा ही बन कर रहे-

तोढ़ स्नेह-ममता का बन्धन, पुत्र-मोह क्यों रखूं
अकारण?
ले लो अपना शेष दाय तुम, राहुल रहे तुम्हारा
ही धन!

अन्तिम सर्ग 'मार्गीयव' में मात्र प्रायः चार पृष्ठों में कवि ने कुछ निष्कर्ष स्वरूप रखा है। यहां कुछ पंक्तियां ही उद्धृत करना ही पर्याप्त है--

कहती निसर्ग कब मनुज लहू से खेले ?
तप-कानन
शान्तअरणय
किसे कहते हैं?
तुम हंसो छीन कर हंसी किसी के मुख की।

यही तो बुद्धत्व है। 'अहिंसा परमोधर्मः' शरीर की हिंसा ही हिंसा नहीं है। मन को हिंसित करना सबसे बड़ी हिंसा है। पुस्तक की अंतिम पंक्तियों को यहां उद्धृत किया जा रहा है जो मानव-हर्ष को गहराई से रेखांकित करती हैं और यह स्पष्ट करती हैं कि किस प्रकार धर्म-चक्र का प्रवर्तन होगा-

मानव हर्षित मन संघ-शरण आवेगा
मानव पुलकित तन धर्म-शरण जावेगा
मानव नत आनन बुद्ध-शरण जावेगा

होगा उस दिन मानव ही चक्र-प्रवर्तक।

निश्चित ही आचार्य कुमुद विद्यालंकार के काव्य-कौशल-शब्द-वैभव एवं अभिव्यक्ति-शक्ति ने इस पुस्तक को एक महाकाव्य का स्वरूप दिया है। यह कहना सर्वथा उचित है कि 'कामायनी' एवं 'साकेत' के पश्चात् 'तथागत' ही हिन्दी का महाकाव्य है। मैं तो निःसंकोच कहूंगा कि भाषिक सौन्दर्य एवं काव्यात्मक अभिव्यक्ति में 'तथागत' 'साकेत' से बहुत आगे है। स्व.मैथिलीशरण गुप्त की अभिव्यक्ति सामान्य है भले ही पुस्तक का आकार बड़ा है। आचार्य कुमुद की प्रायः हर पंक्ति गुप्त जी की किसी भी पंक्ति से अधिक समर्थ है। यहां तक कि गुप्त जी की समर्पण की पंक्तियां जो श्री राम से से सम्बन्धित हैं, भी विद्यालंकार जी की पंक्तियों की समानता नहीं कर सकी हैं। श्री राम क्षमा करेंगे किन्तु तथ्य यही है। प्रस्तुत हैं गुप्त जी की ये पंक्तियां जो स्वयं बताएंगी कि वे 'तथागत' की पंक्ति से कैसे समानता नहीं कर पातीं-

राम तुम्हारा चरित स्वयं ही काव्य है
कोई कवि बन जाए सहज संभाव्य है।

'साकेत' की ये पंक्तियां भी यह स्पष्ट करती हैं कि शब्द-सम्पदा में वे कैसे आचार्य विद्यालंकार से पीछे छूट जाते हैं-

भरत से सुत्र पर भी सन्देह।
बुलाया तक न उसे जो गेय॥

हिन्दी साहित्य को ऐसी श्रेष्ठ कृति देने के लिए हम आचार्य जी के प्रति श्रद्धावनत हैं।

एक बात और आचार्य जी के त्याग के सम्बन्ध में जो कुछ लिखा जाए अल्प ही होगा। आज के युग में शायद ही मिलते हैं। उन्होंने स्वतंत्रता-संग्राम में खुल कर भाग लिया। जेल भी गए लेकिन उन्होंने स्तंत्रता-संग्रामी पेंशन लेने से इंकार कर दिया। उनका तर्क था कि मैंने स्वतंत्रता की प्राप्ति के लिए जो कुछ बन सका किया। अब मैं उसकी क़ीमत क्या वसूलूं।

इसी प्रकार उन्होंने कई सम्मान और पुरस्कार भी ठुकरा दिए। उनके अनुसार उन्होंने जो भी रचनाएं कीं 'स्वांतः सुखाय' की। इसके लिए पुरस्कार और सम्मान क्यों?

ए आर आज़ाद ने बेगूसराय द्वारा प्रायः विस्मृत कर दिए गए कुमुद जी के लिए उनके गांव में एक बहुत बड़े सम्मान-समारोह का आयोजन किया। गांव एवं आस-पास तथा दूर-दराज के बहुत लोग इस समारोह में एकत्रित हुए। बहुत लोगों ने तो पहले-पहल बेगूसराय की इस विभूति के दर्शन किए।

आज़ाद ने उनकी स्मृति को जीवित रखने के लिए कुछ और भी महवपूर्ण कार्य किए।

प्रथम तो यह कि उन्होंने कुमुद विद्यालंकार जी पर एक पुस्तक का प्रकाशन किया। इसमें आज़ाद के अतिरिक्त कई अन्य गणमान्य व्यक्तियों के निबंध विद्यालंकार जी के ऊपर प्रकाशित किए। इस संकलन का नाम है 'आचार्य कुमुद विद्यालंकारः जीवन-वृत्त और उपलब्धियां।' श्री आज़ाद ने 'एक-एक क़तरा पत्रिका' की ओर से एक शताब्दी साहित्यकार पुरस्कार आरंभ किया, जिसे हर वर्ष किसी बड़े साहित्यकार को प्रदान करना था। श्री आज़ाद ने इस श्रृंखला का प्रथम सम्मान-पुरस्कार कुमुद जी को ही प्रदान कर इस-का श्री गणेश किया।
कुमुद जी अपनी लेखनी के बल पर कालजयी तो बन ही गए हैं। लेकिन यह मानना पड़ेगा कि ए आर आज़ाद ने अपनी ओर से इस महान् साहित्य-सेवी की स्मृति को चिरस्थाई बनाने में कोई कमी नहीं रखी। उनकी मृत्यु के बाद उन्होंने उनके नाम पर महाकवि आचार्य कुमुद विद्यालंकार राष्ट्रीय विचार मंच की स्थापना की और कुमुद राष्ट्रीय एवं जनपदीय व प्रांतीय पुरस्कार प्रत्येक वर्ष एक भव्य किंतु शालीन समारोह में प्रदान करना शुरू किया। यह पुरस्कार कुमुद जी ने जिन तीन क्षेत्रों में उल्लेखनीय काम किया है, उसी क्षेत्र में अब तक दिए गए हैं। यानी साहित्य, पत्रकारिता एवं समाजसेवा के लिए हर वर्ष ये पुरस्कार दिए जाते हैं।

इस आलेख का अंत मैं उपाध्याय अमरमुनि की निम्नलिखित पंक्तियों से करते हुए आचार्य जी के प्रति अपने श्रद्धा-सुमन अर्पित करना चाहूंगा-

''कुमुद, कुमुद तू कविता-सर का,
यश-सौरभ विस्तृत है दिग्-दिग्।
यादृग् तेरी प्रतिभा भास्वर,
कौन अन्य प्रतिभा है तादृग्।,, ●

आचार्य हाशमी : एक बहु आयामी व्यक्तित्व

डॉ. भगवतीशरण मिश्र
विश्व प्रसिद्ध उपन्यासकार

मुल्क़ दो हैं तो क्या ख़ुदा भी दो है ?
यह न सोचा कि चले जाते हैं छोड़े घर-दर॥

मात्र दस वर्ष की उम्र में जिसने ऊपर के शेर को लिखा वे हैं आचार्य फज़्लुर रहमान हाशमी। इससे इनके भीतर किशोरावस्था में ही बसी साम्प्रदायिकता सद्भाव की भावना व्यक्त होती है, जो आजीवन इनकी ख़ासियत रही। अवसर था भारत-विभाजन का जब बहुत से मुसलमान भारत छोड़ कर पाकिस्तान जा रहे थे। उस समय इनके नाना मौलाना शाफ़िक़ ने मुसलमानों को रोकते हुए एक लम्बा भाषण दिया था। और कहा था 'ख़ुदा दुनिया का मालिक़ है।' नाना की इसी पंक्ति ने किशोर हाशमी के मुख से उपर्युक्त पंक्तियां उगलवाई थीं।

आचार्य हाशमी का पूरा नाम फ़ज़्लुर रहमान हाशमी था। आपको साहित्य विरासत में मिला था। आपके चाचा सैयद मसूद आलम एक बहुत बड़े शायर थे। मुशायरों में इनको बहुत इज़्ज़त के साथ आमंत्रित किया जाता था। इसके अतिरिक्त उर्दू के कई जाने-माने विद्वान् एवं शायर इनके क़रीबी रिश्तेदारों में थे। इनमें सैयद सुलेमान नदवी, मौलाना मुनाज़िर हसन ग़िलानी, अरबी के विश्व प्रसिद्ध जानकार एवं साहित्यकार हज़रत मौलाना सैयद मोहसिन बिन यहिया तिरहूति प्रसिद्ध हैं।

आचार्य हाशमी हिन्दी, मैथिली और उर्दू तीन-तीन भाषाओं के विद्वान् एवं लेखक थे। मैथिली के लिए तो इन्हें साहित्य अकादमी पुरस्कार भी मिला था। जिस पुस्तक पर पुरस्कार मिल,ा उसका प्रकाशन भी साहित्य अकादमी ने ही किया। वे कई वर्षों तक साहित्य अकादमी के सदस्य भी रहे। इसके अतिरिक्त वह अकादमी की पुरस्कार-चयन-समिति के भी वर्षों सदस्य रहे।

यह आश्चर्य की बात हो सकती है, किन्तु है सत्य कि इनकी योग्यता से प्रभावित होकर अकादमी ने इनकी तीन अनुवाद-पुस्तकों का प्रकाशन किया। ये हैं- मीर तकी मीर, फ़िराक गोरखपुरी और डॉ. अब्दुल कलाम आज़ाद।

आचार्य हाशमी मानव संसाधन विकास मंत्रालय में उच्च शिक्षा के सलाहकार भी रहे। उर्दू के होने के बावजूद इन्होंने अपने स्वाध्याय के बल पर संस्कृत का भी अच्छा ज्ञान प्राप्त किया था। इसके फलस्वरूप इन्हें ललित नारायण मिश्र विश्वविद्यालय से आचार्य की उपाधि भी प्राप्त हुई।

इनकी प्रमुख प्रकाशित पुस्तकें हैं-
1. हरवाहक की बेटी।
2. रश्मि रशि।
3. निर्मोही।
4. मेरी नींद तुम्हारे सपने।

इनकी पन्द्रह से अधिक पाण्डुलिपियां
अप्रकाशित हैं, जो हिन्दी, उर्दू और मैथिली भाषाओं में रची गई हैं। अगर 20 जुलाई 1911 ई. को अकस्मात् इनका निधन नहीं हो जाता, तो ये पाण्डुलिपियां भी पुस्तक का रूप ले सकती थीं।

इनकी मृत्यु पर फतेहपुर मस्जिद के शाही इमाम डॉ.मुफ़्ती मुहम्मद मुकर्रम अहमद ने ठीक ही कहा 'जनाब हाशमी हिन्दुस्तान की एक बड़ी और मक़बूल शख़्सियत थे। उनके गुज़र जाने से साम्प्रदायिक सौहार्द के ताने-बाने को भी धक्का लगा।' उन्होंने कहा कि जनाब हाशमी ने न सिर्फ़ साहित्य और संस्कृति के क्षेत्र में ख़िदमत की है बल्कि समाज के दूसरे क्षेत्रों से भी उनका गहरा ताल्लुक़ था। उन्होंने उनकी मग़फ़िरत की भी दुआ की है।

इनके निधन पर स्थान-स्थान पर श्रद्धांजलि-सभाओं का आयोजन हुआ। सभी वर्ग, सभी सम्प्रदाय और सभी जातियों के लोगों ने इन सभाओं में भाग लिया तथा इनके प्रति अपनी भाव-भीनी श्रद्धांजलि अर्पित की।

ऐसी ही एक श्रद्धांजलि-सभा में इनके इंतक़ाल के कुछ समय पूर्व ही लिखे गए इस शेर को पढ़ा गया तो सभी की आंखें भींग आईं-

ये दुनिया ही नहीं मंज़िल हमारी।
जहां पहुंचा हूं अपने घर गया हूं॥

इनके निधन से आहत होकर मेरे मुख से श्रद्धांजलि के जो शब्द निकले थे। उन्हीं को यथावत् उद्धृत करते हुए मैं इस महान् आत्मा के प्रति अपने श्रद्धा-पुष्प समर्पित करता हूं-

'फज़्लुर रहमान हाशमी के आकस्मिक निधन का समाचार सुनकर अत्यन्त ही दुःख का अनुभव हुआ। उनकी साहित्य सेवा से हिन्दी, उर्दू और मैथिली तीनों ही लाभान्वित होती रही हैं। अपने गांव को ही अपनी कार्यस्थली

बनाकर उन्होंने साहित्य की इतनी बड़ी सेवा की और इस तरह वे साहित्य अक़ादमी एवं मानव संसाधन विकास मंत्रालय के उच्च शिक्षा समिति में सलाहकार बने और इस तरह की कई संस्थाओं से जुड़े रहे। अपने आप में यह एक भारी विस्मय की बात है। छोटे शहरों के लोग तो इस ऊंचाई तक पहुंच ही नहीं पाते हैं। एक ग्रामीण साहित्यकार एवं चिंतक जब इस ऊंचाई को छूता है, तो उसके अंदर की साधना और कल्पनाशीलता का अनुभव लगाने में कोई दिक़्क़त नहीं होनी चाहिए। वे एक अच्छे साहित्यकार तो थे ही जिसका सबसे बड़ा प्रमाण है कि साहित्य अक़ादमी के सदृश प्रतिष्ठित संस्थाओं ने उनकी पुस्तकें प्रकाशित कीं। आश्चर्य की बात तो यह है कि वे हिन्दी, उर्दू, मैथिली तीनों में समान गति से और सभी विधाओं में लेखन करने में सक्षम थे। उनकी विद्वता अद्भुत थी। मूलतः उर्दू से सम्बद्ध होने के बावजूद संस्कृत के सदृश कठिन भाषा एवं साहित्य के भी ये मर्मज्ञ विद्वान् थे। बहुत से संस्कृतज्ञों को इनके समक्ष नतमस्तक होना पड़ता था क्योंकि आज के समय में संस्कृत के बड़े-बड़े विद्वान् भी संस्कृत विशेषकर उसके व्याकरण की जटिलता से भिज्ञ नहीं होते हैं। यही कारण है कि मिथिला यूनिवर्सिटी दरभंगा ने उन्हें आचार्य की उपाधि से विभूषित किया था।

हाशमी : एक गज़लगो एवं सिद्धहस्त कवि

वैसे तो लोग जानते ही हैं कि हाशमी साहब एक बड़े अच्छे गज़लकार भी थे। गज़ल से संबंधित उनकी हस्तलिखित पाडुलिपियां मुझे पढ़ने को मिलीं। उनमें से कुछ को उद्धृत करने का मोह मैं नहीं छोड़ सकता, लेकिन उन पर बाद में आऊंगा। अभी तो मेरे पास उनकी एक पांडुलिपि है, जिसका नाम है 'काव्य-कुसुम' यह एक कविता-संग्रह है, जिसमें न जाने कितनी कविताएं भरी पड़ी हैं। इनमें से कुछ को अपनी संक्षिप्त टिप्पणी के सौद दे रहा हूं -

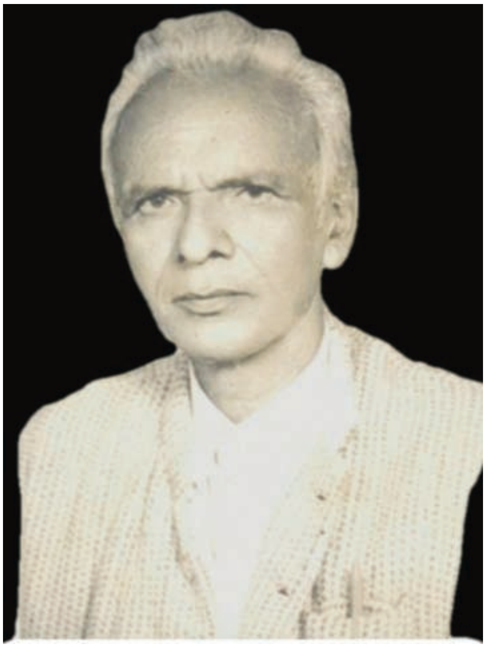

मोम

मैं मोम हूं
जलाने से मेरा क्षय नहीं होगा
मेरा अस्तित्व
किसी-न-किसी तरह रह ही जाएगा।
मैं तुम्हारी तरह लोहा नहीं।

सच है मोम के सदृश व्यक्ति में करूणा होती है, दया होती है, सरलता-सहजता की वह मूर्ति होता है। वह किसी के दुख-दर्द पर मोम-सा ही पिघल पड़ता है। लोहे के हृदय वाला व्यक्ति कब पिघला है?

तूलिका

सौ बार तूलिका उठाओ
रंग भरो उसमें हजार
शब्दों के चित्र बेजुबान से
भावों के रूप निष्प्राण से
लाख बार तूलिका उठाओ
रंग भरो उसमें हजार
शून्य-शून्य भाव-शून्य
शून्य उस व्योम-सा
मन उदास गर रहा
भाव भी विलोम-सा
एक बार तूलिका उठाओ
रंग भरो उसमें एक बार
शब्द चहचहायेंगे
भाव मुस्कुराएंगे
श्वासों की तूलिका
रंग श्रद्धा भाव का
शब्द बोल जाएंगे
भाव खोल जाएंगे
एक बार तूलिका उठाओ
रंग भरो उसमें एक बार...।

सच, लेखनी उठाकर कागज़ के पन्नों को रंगने से कुछ नहीं होता। हज़ार बार उठाओ या लाख बार किंतु मन में भावों की कमी है तो शून्य ही सृष्ट हो पाएगा। एक बार ही लेखनी उठाओ और मन भावपूर्ण हो तो लेखनी कमाल कर जाएगी।

स्व.हाशमी की ऐसी अनेक कविताएं मन को गुदगुदाने के लिए उनकी पांडुलिपियों में सुरक्षित हैं। आवश्यकता है उन्हें प्रकाश में लाने की। कुछ और कविताएं नीचे दी जा रही हैं-

हम दोनों

मेरी पत्नी का मन
घर से अधिक
पड़ोस के घर में लगता है
और मैं भी देश से अधिक

विदेश से प्रभावित हूं

यह एक व्यंग्य कविता है किन्तु इसको पढ़ने से स्पष्ट है कि इसमें साधारण व्यंग्य नहीं है। कविता की गहराई में जाना होगा। इससे यह स्पष्ट होगा कि किस तरह आज विदेशी प्रभाव, बाज़ारबाद, फ़ैशनपरस्ती एवं मूल्यहीनता आदि से देश त्रस्त हो रहा है।

प्रार्थना

ख़ुदा अंगुलियां घी में डुबोऊं
मुझे इस देश का लीडर बना दो
अगर कुछ नाम
वेटिंग लिस्ट में है
तो कम-से-कम
मुझको डीलर बना दो

हाशमी साहब व्यंग्य लिखने में अपनी सानी नहीं रखते। लीडरों की दसों उंगलियां घी में होती हैं। भ्रष्टाचार के इस युग में वे चांदी क्या सोना काट रहे हैं, अतः हाशमी साहब लीडर बनने को लालायित हैं। फिर सोचते हैं कि लीडर बनना कुछ कठिन होगा। वोटों की आवश्यकता पड़ेगी। उसके लिए नोटों की आवश्यकता पड़ेगी उन्हें, कहां से लाएंगे? इसलिए वह डीलर बनने को भी तैयार हैं। अगर इसकी संभावना बने क्योंकि वहां भी लिस्ट लंबी होती है। रूपयों के पहियों के बल पर चलती है। फिर भी डीलर बन जाएं, तो भी कोई कम उपलब्धि नहीं। सरकार का दिया हुआ सारा राशन गेहूं, चावल, दाल, चीनी, तेल आदि सब तो उसी के उदर में जाते हैं। लोग सुबह जाएं अथवा शाम दुकान को बंद ही पाते हैं।

अब हम हाशमी साहब की कुछ ग़ज़लों पर भी विचार करेंगे। इस हस्तलिखित संग्रह का नाम है 'मेरी नींद तुम्हारे सपने'। इसमें संग्रह में भी अनगिनत ग़ज़लें संगृहीत हैं-

अज़्म जिसका जवान होता है
आदमी वह महान होता है

कर्म से वंश की है प्रतिष्ठा
कुछ नहीं ख़ानदान होता है

देश-सेवा हरेक हालत में
आदमी का ईमान होता है

धर्म और जाति चिह्न हैं केवल
आदमी सब समान होता है

कितना बड़ा संदेश इस छोटी-सी ग़ज़ल में छिपा हुआ है। आदमी-आदमी में कोई भेद नहीं होता है, सभी समान हैं। जाति और संप्रदाय अथवा धर्म का कोई महत्व नहीं है एक सच्चे इंसान का, जो अपने कर्म से अपने ख़ानदान की प्रतिष्ठा बढ़ाता है। ख़ानदान के नाम पर नहीं जीता है। यह समान्ता का उपदेश हमारे धर्मग्रंथों ने भी दिए हैं। गीता कहती है 'समत्वं योग उच्चते।' - संभाव ही वास्तविक योग है। एक ख़ूबसूरत-सी ग़ज़ल को उल्लिखित करने के लोभ का संवरण नहीं किया जा सकता।

कौन करे किसको आश्वस्त
सब तो हैं अपने में मस्त

कई दिनों से ख़ाली-ख़ाली
ऊपर नहीं हो यह हस्त

कौन किसी की ख़ातिर करता
करो अपना मार्ग प्रशस्त

भारत की अस्मिता आज भी
जान रहा है विश्व समस्त

वंदा क्या है वह जानेगा
होगा जो अल्लाह परस्त

वैसे शत्रु से क्या डरना
हो जाएगा स्वयं ध्वस्त

वाह रे यायावर का जीवन
जिस जीवन में केवल गस्त

दीन, दुखी तो बेचारा है
जितना सुखी जो उतना त्रस्त

उनकी लेखन शक्ति की जितनी प्रशंसा की जाए, उतनी थोड़ी है। लेकिन उनकी वाचा शक्ति भी कम प्रशंसनीय नहीं थी। किसी भी सभा- सम्मेलन विशेषकर कवि सम्मेलनों के संचालन में वे इतने दक्ष थे कि आयोजक उन्हें अनुनय-विनय पूर्वक अपने यहां ले जाकर अपने समारोह को धन्य करते थे। इसी को कहते हैं- किसी व्यक्ति पर सरस्वती की अपार अनुकंपा।

विद्यादात्री सरस्वती के इस सुपुत्र को अपनी आंतरिक श्रद्धांजलि अर्पित कर मैं स्वयं को धन्य कर रहा हूं। ईश्वर उनकी आत्मा को शांति प्रदान करे।

मुझे पूरी उम्मीद है कि उनके मार्ग का अनुशरण करने वाले उनके दो साहित्यकार पुत्र ए आर आज़ाद और जियाउर रहमान ज़ाफरी अपनी मंज़िल तक पहुंचने में सफल होंगे, पर उनकी समानता करना तो उनके लिए उतना आसान नहीं होगा। फिर भी ये योग्य पिता के सुयोग्य पुत्र साबित हों, यही मेरी कामना है। उनके परिवार के सदस्य उनकी अप्रकाशित पाण्डुलिपि को प्रकाशित करवा कर उनके ऋण से उऋण हो सकते हैं। ●

बाबा नागार्जुन और उनका जनकवि व्यक्तित्व

नरेन्द्र कुमार सिंह
संपादक, समय सुरभि अनंत

वैद्यनाथ मिश्र यानी बाबा नागार्जुन का रचना संसार विपुल है। उन्होंने हिंदी और मैथिली में सर्वहारा वर्ग की पीड़ा को शब्दवद्ध कर 'जन कवि' की रूप में ख्याति अर्जित की। आधुनिक काल में बाबा नागार्जुन की काफी चर्चा होती है। उन्होंने अपनी काव्य रचनाओं

को मुकम्मल मुक्त छंद में लिखा। यह अंदाज़ काफ़ी लोकप्रिय हुआ। बाबा ने मानवीय संवेदनाओं से युक्त जन-जीवन के तमाम विषयों पर निर्द्वंद्व होकर क़लम चलाई।

बाबा नागार्जुन सच्चे अर्थों में एक जनकवि थे। उन्होंने कभी भी अपने स्वाभिमान को खोया नहीं। वे जीवन भर यायावरी ज़िंदगी जीते हुए फिर अनंत आकाश में समा गए।

कवि की भूमिका के संबंध में नागार्जुन का कहना था कि 'कवि एक रिपोर्टर होता है। वह जनता के मन की रिपोर्टिंग करता है।' उनका मानना था कि जनता जब राजनीति में सक्रिय भूमिका निभाती है, तो नेता और अफ़सर डरते हैं। आम जनों के दुःख-दर्द को ध्यान में रखकर तल्ख टिप्पणी करने के लिए वे चर्चित थे। उन्होंने शोषित उत्पीड़ित जनता के हक़ में सोचना तथा ग्रामीण जीवन की विविध घटनाओं, परिस्थितियों का सटीक सार्थक चित्रण करना उनकी मुख्य विशेषता थी। वे बिल्कुल निडर और निर्भीक कवि, साहित्यकार थे। किसी की आलोचना से ना डरते थे, और ना ही घबराते थे।

बाबा नागार्जुन की एक और महत्वपूर्ण पंक्ति है- 'तमाशा घुस के देखो।' सचमुच जब तलक आप किसी के अंदर घुसेंगे नहीं, तो लिखेंगे क्या ख़ाक़? इस प्रवृत्ति के कारण बाबा ग़ुलाम भारत के किसान आंदोलनों से लेकर देश आज़ाद होने के बाद यानी 1974 की संपूर्ण क्रांति तक में बढ़-चढ़कर हिस्सा लिया। उन्होंने चौक-चौराहे पर आंदोलन कर्मियों के आयोजित नुक्कड़ सभा में बढ़-चढ़कर कविता वाचन किया। और बड़े निकट से सबों का तमाशा मज़े के साथ देखा। और जेल भी गए। वैसे स्वतंत्रता के बाद अनेक कवि लेखकों ने सत्ता की बाहें थाम ली। लेकिन बाबा नागार्जुन ने सदैव सत्ता को ठुकराया, दुत्कारा और फटकार। उन्होंने कभी भी सत्ता की बाहें थामने का प्रयास नहीं किया। और प्रतिरोधी कवि बने रहे। उन्होंने अपना जीवन अपने रंग से, अपने ढंग से जीया। हां! वे अनेक संगठनों से जुड़े और अलग भी हुए। बाबा सर्वहारा के, दीन-दुखियों के, शोषित-पीड़ित जन आवाम के कवि माने जाते थे। और इसी कारण वामपंथी पार्टी से जुड़े। फिर उन्होंने देखा कि यहां भी वही जोड़-तोड़ है तो उन्होंने पार्टी से नाता तोड़ लिया।

बाबा नागार्जुन जब जैसा देखा, महसूस किया, वैसा ही लिखा। जो भी लिखा, आंखिन देखी सच्चा साहित्य लिखा। कविता के साथ-साथ बाबा नागार्जुन ने कहानी और उपन्यास भी लिखे। इसमें भी आम आदमी की जीवन गाथा को ही उतारा है। बलचनमा, बाबा बटेश्वर नाथ, नई पौध, जमनिया का बाबा और दुखमोचन आदि उपन्यासों को पढ़ने से स्पष्ट हो जाता है कि बाबा की क्या दूर दृष्टि थी! उन्होंने सदैव साहित्यिक दायित्वों का पालन किया। उन्होंने हमेशा इस बात का ख़्याल रखा कि जनता का मनोबल टूटे नहीं। जनता का जीवन स्तर ऊंचा हो, इसी पर उन्होंने अपना

ध्यान केंद्रित रखा। उन्होंने अपनी कविता को हथियार की तरह इस्तेमाल करके बेखटक क़लम चलाया। देश में अकाल हो, किसान आंदोलन हो, छात्र आंदोलन हो, ज़मींदारों का अत्याचार हो या फिर बिहार का चर्चित बेलछी नरसंहार हो, ढोंग पाखंड हो या फिर बेतुके रीति-रिवाज़ हों, सभी पर लिखा। और ग़लत व्यवस्था के प्रति आक्रोश प्रकट किया।

बाबा नागार्जुन ने जीवन भर यायावरी ज़िंदगी व्यतीत किया। वे कभी भी एक जगह बंध कर नहीं रहे। घर-द्वार छोड़ दिया। और जब जहां चाहा, वहां पहुंच गए। किसी भी कवि, साहित्यकार या अपने चाहने वालों के यहां वे पहुंच जाते। दो-चार दिन रहते, फिर कंबल और झोला टांगकर किसी दूसरे पड़ाव पर पहुंच जाते थे। उनके चाहने वाले भी काफ़ी थे। जिनके घर बाबा पहुंच जाते, वे भी अपना अहो भाग्य मानते थे। बाबा घर परिवार में ऐसे घुल-मिल जाते, जैसे परिवार के सदस्य हों।

इस प्रकार बाबा ने अपनी पूरी ज़िंदगी खपा दी। लेकिन वह कभी भी जनता को भूलाया नहीं। वे जनता की आवाज़ बुलंद करते रहे। वे सचमुच के सच्चे जनकवि थे।

मासूम बच्चियों पर हो रहे अत्याचार, उत्पीड़न पर बाबा ने 'तालाब की मछलियां' शीर्षक कविता में एक मैथिल कन्या का जो संवाद कराया है। बेहद मार्मिक संवाद है -

हम भी मछली, तुम भी मछली
दोनों ही उपभोग की वस्तु हैं
ज्ञाता स्वाद सुधीजन
सजनी हम दोनों को, अनुपम बतलाते हैं ।

लोकतंत्र के महापर्व चुनाव में सत्ताधारी किस तरह से धांधली मचाता है, उस पर भी बाबा ने व्यंग्यात्मक ढंग से लिखा है-

नोटों की गड्डियों, लाठियों बंदूकों की जय हो।
बोगस मतपत्रों से बोझिल संदूकों की जय हो।

ऐन केन प्रकारेण बाबा ने गद्य, पद्य, उपन्यास एवं कहानियों के माध्यम से अलख जागते हुए साहित्य साधना में मृत्युपर्यन्त लीन रहे। उनके साहित्यिक अवदान हिंदी की अमूल्य निधि है। उनका संघर्ष युगों युगों तक याद किया जाता रहेगा। उन्होंने साहित्य की जो धारा बहाई, वह कभी क्षीण नहीं होगी। ●

बेगूसराय, बिहार

त्रिलोचन आधुनिक हिंदी कविता के कबीर

राजकिशोर राजन
कवि, लेखक एवं साहित्यकार

'ताप के ताए हुए दिन' (सन् 1980) में एक कविता है 'एक लहर फैली अनंत की' जिसकी प्रथम पंक्ति है - 'सीधी है भाषा वसंत की', त्रिलोचन आगे समझाते है कि कभी आंख ने समझी तो कभी कान ने पाई, कभी रोम-रोम से वह प्राणों में भर आई यानी महसूस और अनुभव करने के माध्यम भिन्न हो सकते हैं परन्तु उससे क्या! वसंत की भाषा तो एकदम सीधी है। धनानंद भी प्रेम के बारे में यही कह गए हैं - 'जहां नैकु सयानप बाँक नहीं।' कहने का आशय है कि 'सहज सुंदर' के साधक अपने त्रिलोचन का जीवन, कविता, वसंत और प्रेम स-रीखा है - बिलकुल सीधा। सपाट हम नहीं कह सकते। सीधे को सपाट दुनियादारी में डूबे लोग कहते हैं। अगर त्रिलोचन सपाट होते तो भाषा के समर्थ इंजीनियर नहीं होते। अपनी लंबी यात्रा में अध्यापन, यायावरी, पत्रिकाओं और भाषा कोशों के संपादन से लेकर कई-कई पड़ाव देखे, बहुत कुछ सीखा, समझा और मंथन किया परन्तु सीधेपन के ठाठ को कभी नहीं छोड़ा। धन-दौलत से बेपर-वाह इनके फकीराना (कबीराना भी कहा जा सकता है) कवि व्यक्तित्व को वसंत ही रास आया।

खेतिहर परिवार में जन्मे त्रिलोचन का पारि-वारिक नाम वासुदेव सिंह था। 'शास्त्री' उपाधि मिलने के बाद अपने त्रिलोचन, त्रिलोचन शास्त्री बने, पर इस उपाधि को पॉकेट में रखकर ही आजीवन चलते रहे। शिवप्रसाद सिंह ने लिखा है 'शास्त्री को लोकजीवन से उत्पन्न स्नेहगंधी मानस मिला है। वे चिल्ले जाड़े में कुहरे लिपटे गंवई वातावरण में 'अतवरिया' को देख कर लाचारी की मार का राग अलापें या 'भिखरिया' की अकिंचनता पर तरस खाएं, लगेगा कि यह सारा कुछ आत्मवेदना का ही इज़हार है।' त्रिलोचन की पहली काव्यकृति 'धरती' सन् 1945 में प्रकाशित हुई जबकि 'अमोला' सन् 1990 में प्रकशित (वाणी प्रकाशन) अंतिम काव्यकृति है। 'ताप के ताए हुए दिन' (सन् 1980) और 'उस जनपद का कवि हूं' (सन् 1981) उनकी सर्वाधिक लोकप्रिय कृतियां रहीं। 'ताप के ताए हुए दिन' के लिए इन्हें साहित्य अकादमी पुरस्कार भी प्राप्त हुआ। देश-काल 986) कथासंग्रह और काव्य और अर्थबोध (सन् 1985) आलोचना पुस्तक हैं। प्रभूत मात्रा में लिखने के बावजूद त्रिलोचन जब-जब आत्मालोचन करते हैं, वे नयी तेजस्विता के साथ हिंदी के पाठकों के सामने आते हैं:-

लड़ता हुआ समाज नयी आशा अभिलाषा
नये चित्र के साथ नयी देता हूं भाषा (दिगंत)

त्रिलोचन के काव्य का यह महत्वपूर्ण आधार है। इस आधार को उन्होंने कभी नहीं छोड़ा और इसके लिए आम आदमी की भाषा में आम आदमी से संवाद करते रहे। यही उनकी पूंजी है। परन्तु यही पूंजी कभी-कभी उनकी सीमा रेखा भी बन जाती है। 'दगंत' में संकलित उनकी एक कविता 'जगदीश जी का कुत्ता' उसी प्रकार 'साथ-साथ' नामक कविता जो 'तुम्हें सौंपता हूं' संग्रह में संकलित है, जिन्हें उदाहरण के तौर पर लिया जा

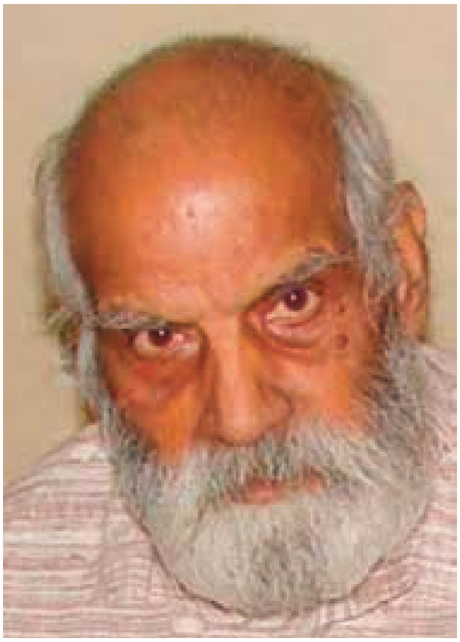

सकता है और कहा जा सकता है कि त्रिलोचन साधारण कविताओं के कवि भी हैं -

मुझे आपके कुत्ते ने कल काट लिया था,
जगदीशजी, आपने भी क्या कुत्ता पाला।
और, प्रिय साही जी
शुभकामना आपकी मुझको
अभी मिली है, जहां व्यक्त है नए
वर्ष की रम्य कल्पना . ...

परन्तु संसार में ऐसा कौन कवि होगा जिसकी सभी कविताएं असाधारण हैं ! कई-कई साधारण कविताएं ही किसी एक असाधारण कविता के लिए रास्ता बनाती है। गेहूं के साथ भूसा नहीं हो तो फिर गेहूं कैसा ! त्रिलोचन भूसे को अलगाने वाले नहीं हैं चूंकि गांव, किसान, खेत-बघार से उनका गहरा नाता रहा। तभी तो अपनी कविता के माध्यम से अपनी काव्य-दृष्टि का भी उद्घाटन करते हैं -

जीवन जिस धरती का है। कविता भी उस की
सूक्ष्म सत्य है, तप है, नहीं चाय की चुस्की।

कविता उनके लिए जीवन, धरती, अभाव, दुख, करूणा, ग़रीबी से अलग नहीं है साथ ही त्रिलोचन की कविताई को समझने के लिए ये पंक्तियां महत्वपूर्ण हैं।

ध्रुव शुक्ल, 'त्रिभुवन संचयिता' की भूमिका में लिखते हैं कि 'महात्मा तुलसीदास की आंखों में राम हैं, महाप्राण निराला की आंखों में तुलसी हैं और उन्नतप्राण त्रिलोचन की आंखों में निराला हैं।' निराला की भांति त्रिलोचन का जीवन और काव्य बहुआयामी है। एक तरफ उनकी कविता भारतीय परंपरा सम्मत विवेक और अपने समय के विवेक दोनों को एक साथ साधती है। एक ओर इन्होंने गीत, बरवै, गजल, चतुष्पदियां और कुंडलियों की रचना की वहीं दूसरी ओर मुक्त छंद की कविताएं भी लिखी। इसके अलावा यह हिंदी में सॉनेट के रचयिता के रूप में प्रसिद्ध हैं। इन्होंने कहानियां और आलोचना भी लिखीं साथ ही डायरी लेखन को भी अपनाया। ध्यान देने की बात है कि 'सॉनेट' की रचना करने वाले इस कवि ने स्वीकार किया है कि जहां तक भाषा का प्रश्न है 'तुलसी बाबा भाषा मैंने तुमसे सीखी। मेरी सजग चेतना में तुम रमे हुए होॡ यह इस कवि की स्वीकारोक्ति है जो निराला से लेकर इतालवी कवि पेट्रार्का से लेकर शेक्सपियर तक की परंपरा को साथ ले कर चलता है मगर अपनी राह पर चलता है और अपनी दिशा स्वयं तय करता है। वह कहता भी है:-

बनी बनाई राह मुझे कब, कहां, सुहाई,
गहन विपिन में धँसा, नहीं की राम दुहाई।

(कविता शीर्षक - झाड़ और झंखाड़, संग्रह - अनकहनी भी कुछ कहनी है)

यह कवि अपनी नंगी पीठ पर आजीवन ज़माने का कोड़ा झेलता रहा परन्तु धीरज कभी नहीं छोड़ा। इसीलिए त्रिलोचन के शब्दों में, कविताई में जो ताक़त है वह हिंदी के बहुत कम कवियों के पास है। त्रिलोचन को पूरा भरोसा था कि कविता को ताक़त, कवि के जीवन से ही मिलती है, जैसा जीवन होगा, उसके प्रभाव से कविता भी प्रभावित होगी। आज अगर कविता की ताकत क्षीण हो रही है तो इसमें कविता का क्या दोष है ! दोष उस कवि जीवन का है जो घोर सांसारिक हो गया है। त्रिलोचन अकारण नंगी पीठ पर नहीं झेलते रहे। उनके सामने कविता थी और उसके लिए जो कुछ झेलना पड़े वह क्षद्र था। 'अनकहनी भी कुछ कहनी है' नामक संग्रह में 'झेला नंगी पीठ' शीर्षक कविता की आखिरी पंक्तियों को देखें -

अगर न पीड़ा होती तो भी क्या मैं गाता
यदि गाता तो क्या उस में ऐसा स्वर आता।

त्रिलोचन की पीड़ा महादेवी की पीड़ा नहीं है। वह समाज के एक सामान्य आदमी की पीड़ा है। वे इन पंक्तियों के माध्यम से एक बड़ा प्रश्न भी करते हैं, अपने समकालीनों से, अपने साहित्य संसार से, साथ ही हमारी आज की पीढ़ी के लिए भी कि हाजमोला आदि खा-खा कर खाना पचाने वाले जब भूख, ग़रीबी, अभाव और शोषण पर लिख रहे हैं तो लिखते रहें, उन्हें कौन रोकता है, परन्तु वह निष्प्राण होगा, अवास्तविक होगा। प्रभाकर श्रोत्रिय (कवि परंपराः तुलसी से त्रिलोचन) ने लिखा है कि त्रिलोचन की प्रकृति में न निराला जैसे झकोरे हैं, न पंत जैसी वर्तुलता, न बच्चन जैसी लोच और मादकता, और तो और, उनका 'अलग' इतना दीप्त है कि उनके सामाजिक चित्र और भाषिक लक्षण केदार, नागार्जुन और सुमन से भी नहीं मिलते। न केदार जैसी कला-प्रवीणता वे दिखाते हैं, न नागार्जुन जैसी फक्कड़ लोकायती, न सुमन जैसा आवेश-आवेग। कई जगह तो त्रिलोचन धरती से, यथार्थ से बिना रूपकात्मक संबंध से जुड़े हैं, यानी सीधे गांव से, मनुष्य के अकृत्रित, मौलिक निरीक्षक और निर्वसन प्रकृति से निर्वसन शिशु की तरह, बीच में कोई पर्दा नहीं न कोई उत्तेजन। इस दृष्टि से भी वे अलग स्रष्टा हैं।'

त्रिलोचन मेरे ख़्याल से आधुनिक हिंदी कविता के कबीर हैं। दोनों में बहुत कुछ साम्य है। जैसे कबीर को 'काग़ज़ की लेखी' नहीं 'आंखिन देखी'

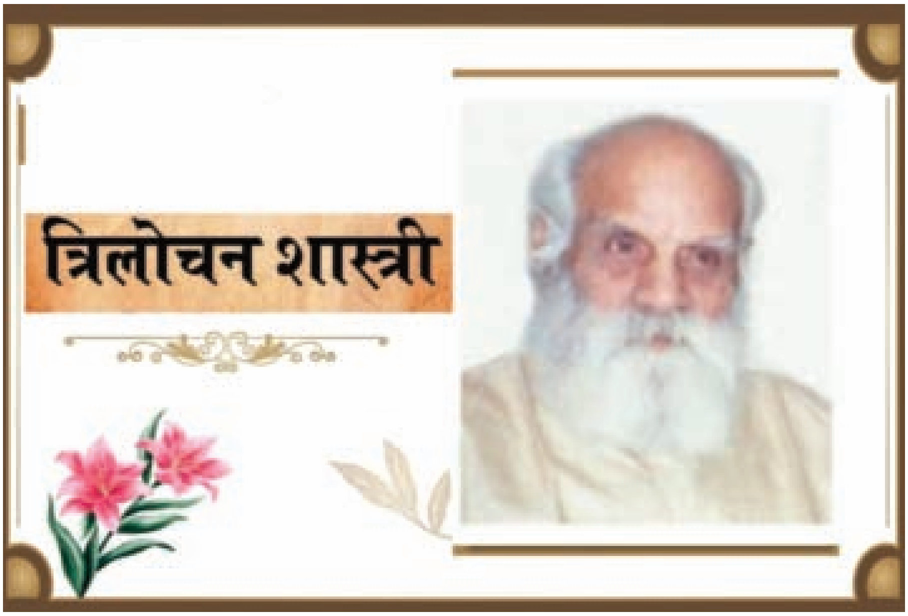

जीवन में भी ज़रा देर से गले उतरती है। इनकी काव्ययात्रा दुख और संघर्षों के बीच निरंतर आस्था और एक अनाहर स्वर की यात्रा है। इन्हें ग़ालिब बहुत प्रिय थे और वे प्रायः उनका एक प्रसिद्ध शेर सुनाया करते थे-

क़र्ज़ की पीते थे मय लेकिन समझते थे कि हां

रंग लाएगी हमारी फ़ाक़ा-मस्ती एक दिन

त्रिलोचन को पूरा भरोसा था कि उनकी फ़ाक़ा मस्ती एक दिन रंग लाएगी।

मुक्तिबोध ने त्रिलोचन के काव्यसंग्रह 'धरती' की समीक्षा करते लिखा है कि - 'कवि में नैतिक सच्चाई बहुत प्रबल होने के कारण ही वह सामाजिक लक्ष्य के प्रति उन्मुख है।' मलयज ने भी 'दिगंत' पढ़ने के बाद प्रतिक्रिया में लिखा है कि 'चाहे जिस भी नज़र से देखें घूम-फिरकर एक ही बात मन में आती है कि त्रिलोचन की कविता एक ठेठ भारतीय जन की कविता है। फणीश्वरनाथ रेणु ने त्रिलोचन के बारे में जो लिखा है उसे पढ़कर मन में हूक उठ रही है 'कविता मेरे लिए समझने-बूझने या समझाने का विषय नहीं, जीने का विषय है। कवि नहीं हो सका, यह कसक सदा कलेजे को सालती रहेगी। और, अगर कहीं कवि हो जाता तो, त्रिलोचन नहीं हो पाने का मलाल जीवन-भर रहता।' त्रिलोचन पूरी छूट देते हैं कि आप उनकी कविता को चाहें तो कविता कह लें। मगर उन्हें यक़ीन है कि जो रसज्ञ हैं उनके लिए उन्होंने अपने दिल की बात लिखी है कि जो अजीर्णग्रस्त हैं वे तो यकीनी तौर पर उनकी कविता को कठघरे में खड़ा करेंगेः-

इसमें क्या है, मेरे और आपके दिल की
धड़कन है, कहना चाहें तो कविता कह लें,
इसकी धारा में बहना चाहें तो बह लें।
देख सकेंगे यहां धूपछाँही झिलमिल की
जो रसज्ञ हैं, इसे उन्हीं के लिए लिखा है
जो अजीर्णग्रस्त है, कहेंगे इसमें क्या है।

(अनकहनी भी कुछ कहनी है) ●

कंकड़बाग, पटना

कहनी थी उसी प्रकार त्रिलोचन को आम जन की बात कहनी थी। इससे कम दोनों को कुछ भी स्वीकार नहीं। कीमत चाहे जो और जितनी चुकानी पड़े। 'फूल नाम है एक' संग्रह की कविता 'ठोक बजा कर देख लिया है' में वे डंके की चोट पर घोषणा करते हैंः-

ठोक बजा कर देख लिया, कुछ कसर न छोड़ी
दुनिया के सिक्के को बिलकुल खोटा पाया।

यह ठोक, बजा कर देखने का काम कबीर की भांति त्रिलोचन ही कर सकते हैं। ऐसी सीधी और सच्ची बात वसंत का अग्रदूत ही कर सकता है। दुनिया के सिक्के को बिल्कुल खोटा कहना व्यंग्य भी है, विषाद भी और साथ में दुनिया से अटूट नेह-छोह भी। अपने समय और समाज से टूट कर प्रेम करने वाला कवि ही ऐसा कह सकता है। त्रिलोचन, कृत्रिमता विरोधी रहे हैं, उन्हें मिलावटी और दिखावटी नापसंद है। वे अपने को भी बरी नहीं करते। अपने ऊपर भी व्यंग्य कसते हैं, स्वयं को घोंचू भी कहते हैं कि 'कैसा आदमी हूं जो भाषा, छंद, भाव के पीछे जान खपा रहा हूं जबकि इनका जमाना लद गया। अब कवि कहलाना बहुत सरल है, एक प्रकार से यह खेलों में नया खेल है। अगर कोई विषय नहीं सूझता तो 'ढेला' ही लिख दो और इसके बाद लिख दो वह 'हंसता' था।' ठहर कर विचार करने की जरूरत है कि त्रिलोचन का यह व्यंग्य कितना व्यापक है। इन दिनों जब कविता व्यापक सरोकार से जुड़ रही है उसकी दुनिया निरंतर समृद्ध हो रही है वहीं आलोचकों और कतिपय पत्र-पत्रिकाओं के लिए कवितायें बनाई जा रही है, कविता अमूर्त्तन का शिकार हो जन-जीवन से कटती जा रही हैं और हिंदी के कुछेक आलोचक ऐसी कविताओं को मथ कर युगबोध प्रकट करा रहे हैं जैसे बालू से घी निकालने की जादूगरी हो। कविता की चर्चा कम, कवि की चर्चा ही सुनाई पड़ती है। मंगलेश डबराल से (त्रिलोचन के बारे में - सं. गोबिन्द प्रसाद) स्वयं त्रिलोचन ने कवि-कविता के संबंध में जो कुछ कहा है उससे हम त्रिलोचन को कुछ और क़रीब से समझ सकते हैं - 'कोई कवि सहज और स्वस्थ रहे तो समझ लीजिए कुछ कसर है। कविता तो एक जीवन को तोड़कर सकल जीवन बनाती है। और जो जीवन टूटता है वह कवि का है', निराला को तो अपने से बाद के कवियों की कविताएं भी कंठस्थ रहती थीं। उन्होंने तो उस वर्ग तक संपर्क किया जहां नई पीढ़ी भी नहीं पहुंची। श्रम करने वाले, तीर्थ यात्री, नंगे पैर चलने वाले - इन लोगों के साथ ज़मीन पर बैठकर बात करते थे। तो ऐसा आदमी निरंतर ताज़ा होता जाएगा। निराला में आख़िरी समय तक ताज़गी है। यही ताजगी अगर बनी रहे तो आप कवि रह सकते हैं।'

त्रिलोचन में जो सादगी है वह कविता में क्या

लोकतंत्र के भयावह दौर का मर्सिया पाठ

पूनम सिंह
वरिष्ठ साहित्यकार

राही मासूम रज़ा का लेखन मौजूदा समय का एक ऐसा स्थाई भाव है, जो पाठ के क्रम में अपने 'समकाल' से टकराता अपनी प्रभावी भूमिका का आद्योपांत अहसास कराता है। आज पूरे विश्व में साम्प्रदायिकता का उभार और राष्ट्रवाद का हुंकार अपने चरम पर है। ईरान, इराक़, सीरिया, अफ़ग़ानिस्तान, बंगला देश, श्रीलंका जैसे देशों के वैश्विक परिदृश्य में आज भारत के भीतर भी एक नया भारत जन्म ले चुका है। हिन्दुस्तान में 'हिन्दुत्व' की अवधारणा के साथ मुसलमान और पाकिस्तान एक दूसरे के पर्याय हो गए हैं। वह आवाज जो देश विभाजन के समय सत्ताधारियों के बीच से उठी थी- 'मुसलमान पाकिस्तान जाए' वह आवाज़ स्वतंत्र देश में आज अधिक उग्र और आक्रामक रूप में एक बार फिर से गूंजने लगी है।

राही मासूम रज़ा ने अपने सभी उपन्यासों और कहानियों में संभावित इस आवाज़ को बहुत पहले ही सुन लिया था। कालजई कृति 'आधा गांव' में शिया मुसलमानों के बहाने राही ने हिन्दू मुसलमान शब्द की पहचान दोआबी सोच और सामाजिकता के व्यापक फलक पर की। स्वतंत्रता पूर्व देश के आवाम में हिन्दू मुसलमान शब्द घृणाजनित भाव की तरह कभी नहीं व्यवहृत होता था। 'गंगोली' गांव को अपना घर, अपनी जमीं अपना दीन और अपना ईमान मानने वाले लोग अपनी छोटी सी दोआबी दुनिया में अपना दुःख दर्द, अपनी हंसी-ख़ुशी सभी 'बैने' की तरह मिल बांट कर खाते थे। गंगोली गांव के वाशिंदे चाहे वह किसी धर्म, किसी जाति समुदाय के थे- आपसी भाईचारे की मज़बूत डोर में बंधे थे। इसलिए देश के बंटवारे का कोई तर्क उन्हें पाकिस्तान बनने के औचित्य से नहीं जोड़ पाता था। लेकिन सत्ता लोलुप राजनेताओं ने उनके भीतर भय और आशंका के विषबीज बोकर उन्हें हिन्दू और मुसलमान में बांट दिया। उस समय देश को साम्प्रदायिकता के आरे से दो टुकड़ों में विभाजित करने वालों में मुस्लीम लीग, हिन्दू सभा और राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ की अहम भूमिका थी।

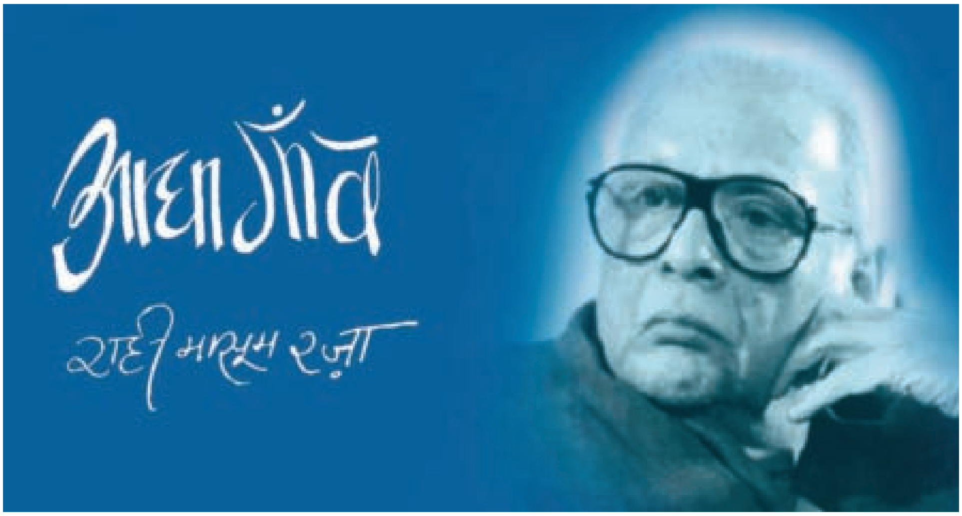

राही मासूम रज़ा ने सियासती उस मंशा को अपने उपन्यास 'आधा गांव' में बहुत मार्मिक शब्दों में उकेरा है - 'जनसंघ का कहना है कि मुसलमान यहां के नहीं हैं। मेरी क्या मजाल कि मैं उसे झुठलाऊं। मगर यह कहना ही पड़ता है कि मैं ग़ाज़ीपुर का हूं। गंगोली से मेरा संबंध अटूट है। वह एक गांव ही नहीं है, वह मेरा घर भी है। घर! यह शब्द दुनिया की हर बोली और भाषा में है और हर बोली और भाषा में यह उसका सबसे ख़ूबसूरत शब्द है। इसलिए मैं उस बात को फिर दुहराता हूं। क्योंकि वह केवल एक गांव नहीं है। क्योंकि वह मेरा घर भी है। 'क्योंकि' यह शब्द कितना मज़बूत है। और इस तरह के हजारों हजार 'क्योंकि' और हैं और कोई तलवार इतनी तेज़ नहीं हो सकती कि इस 'क्योंकि' को काट दे। और जब तक यह 'क्योंकि' ज़िंदा है मैं सैयद मासूम रज़ा आब्दी ग़ाज़ीपुर का ही रहूंगा, चाहे मेरे दादा कहीं के रहे हों ...।'

'घर निकाला' का इससे बड़ा हाहाकार करता बयान और क्या हो सकता है?

कृष्णा सोबती ने भी 'जिंदगीनामा' और 'गुजरात पाकिस्तान से गुजरात हिन्दोस्तान' जैसे उपन्यासों में विस्थापन के इस दर्द को कलेजा काढ़ कर लिखा था और फ़िज़ाओं में उसे घोलकर कहा था - 'बहती हवाओं, याद रखना हम यहां रह चुके हैं।'

विभाजन की त्रासदी जिसने देखी और भोगी है, उसके भीतर वह दर्द आज भी नासूर की तरह टभकता है। 'आधा गांव' में राही ने जिस 'घर' को दुनिया की बोली और भाषा में सबसे ख़ूबसूरत शब्द कहा था वह 'घर' आज अल्पसंख्यकों के लिए 'आधा घर' होकर रह गया है।

लेखक ने 'आधा गांव' की भूमिका में कहा भी है - 'यह कहानी उन खण्डहरों की है, जहां पहले मकान थे और यह कहानी उन मकानों की, जो खण्डहरों पर बनाए गए हैं।'

इस कथन में मनुष्यता के लहूलुहान इतिहास की दारुण पीड़ा है। उन दिनों जब प्रेम, सौहार्द, भाईचारे के खण्डहर पर आज़ाद देश का तिरंगा फहरा रहा था - मलवे के ढ़ेर के नीचे तीन शब्द विषबीज की तरह सुलग रहे थे, जिसे राही ने दूसरे उपन्यास 'टोपी शुक्ला' में अपनी कलम की नोक से उकेर कर सबको दिखाया था - ''नफ़रत ! शक ! डर ! इन्हीं तीन डोगियों पर हम नदी पार कर रहे हैं। यही तीन शब्द बोए और काटे जा रहे हैं। यह शब्द धूल बनकर मांओं की छातियों से बच्चों के हलक में उतर रहे हैं। दिलों के बंद किव-ाड़ों की दराजों में यही तीन शब्द झांक रहे हैं। आवारा रूहों की तरह ए तीन शब्द आंगनों में मंडरा रहे हैं। चमगाड़ों की तरह फड़फड़ा रहे हैं और रात के सन्नाटे में उल्लुओं की तरह बोल रहे हैं। काली बिल्ली की तरह रास्ता काट रहे हैं। कुटनियों की तरह लगाई बुझाई कर रहे हैं और गुण्डों की तरह ख़्वाबों में कुंआरियों को छेड़ रहे हैं और भरे रास्तों से उन्हें उठाए ले जा रहे हैं।''

इन पंक्तियों में हम अतीत के आईने में वर्त्तमान समय का एक मुक्कमल चेहरा देख सकते हैं। अल्पसंख्यकों, स्त्रियों, दलितों पर होते अत्याचार और नृशंसताएं हमारी आंखों के सामने से रोज गुजरती है। लेकिन हमारी आवाज़ गले में ही घुट कर रह जाती है। वे तीन शब्द ''नफ़रत, शक और डर - आज भी लोकतंत्र की ज़मीन पर बोए और काटे जा रहे हैं।''

यह कितनी बड़ी बिडम्बना है कि सत्ता पर क़ाबिज़ होने के लिए जो राजनीति हर देशकाल, समय समाज में साम्प्रदायिक ध्रुवीकरण की रणनीति बनाती है वही सत्ताधारी होकर जनतांत्रिक मूल्यों की धज्जियां उड़ाने लगती है। हम खुली आंखों से देख रहे हैं - राजनीति में उदात्त विचार और व्यापक सरोकारों का समय अब पीछे छूट गया है। राष्ट्रवाद की नई परिभाषा में 'गौमाता' 'भारतमाता' का पर्याय बन गई है और गौ मांस खाने वाले लोग देशद्रोही करार दिए गए हैं। आज की राजनीति में धर्म-जाति, खान-पान का ध्रु-वीकरण गहरी चिंता और संकट का विषय है। जनतांत्रिक मूल्यों के दमन में हिन्दुत्व की अवधारणा 'जिहादी' रूप ले चुका है। अपने ही देश में अपने लोगों के बीच पीढ़ियों से जो हिन्दू मुसलमान बन्धुत्व की भावना से एक दूसरे के सुख-दुःख में साथ रहे हैं, धर्म की राजनीति के कारण आज फिर अलग होने के लिए विवश किए जा रहे हैं। हिन्दू मुसलमान का नारा राष्ट्र का सबसे बड़ा एजेंडा बन गया है, जिसके सामने भूख, ग़रीबी, शिक्षा, स्वास्थ्य और बेरोज़गारी जैसी जीवन संघर्षी समस्याएं गौण हो गई हैं।

सत्ताधारी वर्ग ने आज हिन्दुत्व की राजनीति को राजनैतिक आंदोलन का रूप दे दिया है। इस आंदोलन के सामने परतंत्र देश का राष्ट्रीय और सांस्कृतिक आंदोलन गौण हो चुका है। आज देश में राजनीति की क्रूर विडम्बना को छिपाने के लिए एक 'डिफेंस मैकेनिज़्म' तैयार किया जा रहा है जिसमें नया राष्ट्रवाद और नए भारत की परिकल्पा के साथ देश का नया इतिहास भी गढ़ा जा रहा है। राजनीतिक हितों को साधने वाला नया इतिहासबोध आज भारतीय इतिहास के प्राचीन पृष्ठों को ख़ारिज कर रहा है। लोकतंत्र के लिए यह एक अहम और विचारणीय मुद्दा है पर लोकतांत्रिक प्रक्रिया में आज मुद्दों पर कोई बहस नहीं होती, केवल नारे उछाले और भुनाए जाते हैं।

राही इन प्रश्नों को अपनी सृजनात्मक प्रक्रिया से जोड़ते हैं। उनकी रचनाओं में आज के समय के तमाम जरूरी विमर्श मौजूद हैं। राही की लेखनी आज के अराजक समय के बदलते परिदृश्य में प्रश्न उठाकर लोकतांत्रिक पैमाने के मूल्यांकन में बहुत मजबूती से अपनी प्रासंगिकता सिद्ध करती है। 'आधा गांव' और 'टोपी शुक्ला' के किरदारों के संवाद को सामने रखकर राही ने देश के विखण्डन के पीछे के कारणों की पड़ताल की है। क्रिया प्रतिक्रिया के रूप में साम्प्रदायिक विद्वेष का वीभत्स मंज़र देश में जब भी घटित होता है तो इसके पीछे अधिनायक तंत्र का क्रूर चेहरा अट्टास करता दिखता है।

देश की राष्ट्रीय एकता को खंडित करने में साम्प्रदायिकता की तरह ही भाषाई कट्टरता भी एक विघटनकारी तत्व है, जिसे लेकर राही ने बंटवारे के समय ही एक बड़ा प्रश्न उठाया था 'आधा गांव' के किरदार तन्नू के माध्यम से। तन्नू ने मुस्लिम लीग के प्रचारकों, जो लेके रहेंगे पाकिस्तान' और 'इंक़लाब ज़िन्दाबाद' के नारे लगा रहे थे, उनसे भाषा को लेकर अपना एक अहम प्रश्न किया था- ''पाकिस्तान बनने के बाद आप इस उर्दू को यहीं छोड़ जाएगे या अपने

साथ ले जाएगे?'' देखिए मैं कोई सियासी आदमी नहीं हूं। लेकिन मैंने लडाई का मैदान देखा है। लड़ाई में मरने वाले बड़ी बेबसी की मौत मरते हैं। मारने वाला भी बहुत बदसूरत हो जाता है। अपनी जान बचाने के लिए वह सामने वाले को दुश्मन मानने और उससे नफ़रत करने के लिए मजबूर होता है... इसीलिए मैं बहुत डरता हूं। आप जान का डर पैदा कर रहे हैं। डर की यह फसल हमें ही काटनी पड़ेगी इसलिए मैं बहुत डरता हूं।

यह एक सार्थक संवाद है आज के देशकाल समय समाज में हिन्दू मुसलमान करने वालों से। अल्पसंख्यक होने के नाते साम्प्रदायिक विद्वेष फैलाने में मुसलमानों की कोई भूमिका नहीं हो सकती - राही इस तर्क के भी पक्षधर नहीं हैं इसलिए वे बंटवारे के साथ मुस्लिम लीग के दो राष्ट्र वाली थ्योरी को नहीं स्वीकार पाते हैं। और उस निर्मम सच्चाई के आलोक में आज के बुद्धिजीवियों के बीच धर्म संप्रदाय और भाषा को लेकर एक सार्थक विमर्श खड़ा करते हैं। उन्होंने देश विभाजन की व्यवस्थागत साजिश को वर्तमान राजनीति की कार्य प्रणाली में बहुस्तरीय रूपों में फलते फूलते देखा है। भाषावादी साम्प्रदायिकता को लेकर 'आधा गांव' में राही की पंक्तियां हैं - ''अरबी का 'फतह' हिन्दी के 'गढ़' में घुलकर एक इकाई बन जाता है। इसलिए तो पाकिस्तान बन जाने के बाद भी पाकिस्तान की हकीकत मेरी समझ में नहीं आती। अगर 'अली' को 'गढ़' और 'ग़ाज़ी' को 'पुर' और 'दिलदार' को 'नगर'से अलग कर दिया जाएगा तो बस्तियां बीरान और बेनाम हो जाएगी और अगर 'इमाम' को 'बाड़े' से निकाल दिया जाए तो मुहर्रम कैसे होगा।'' राही की चिंता में भाषा का साम्प्रदायिकीकरण एक सामाजिक विमर्श है, जिसपर समय सजग बुद्धिजीवियों के बीच खुलकर बात होनी चाहिए।

धर्म विशेष के नाम पर आज स्थान, चौक-चौराहे, गलियों के नाम बदले जा रहे हैं। वर्षों से जन मानस में रचा बसा नाम मुग़लसराय अब पं. दीनदायल उपाध्याय के नाम से घोषित हो चुका है। इलाहाबाद, प्रयागराज हो गया। 'अलीगढ़' के लिए 'हरिगढ़' नाम की प्रस्तावना दी गई है। 'फिरोजाबाद' 'चन्द्रनगर' के रूप तो सुल्तानपुर कुशनगर के रूप में प्रस्तावित हुआ है। दिल्ली के भीतर भी नामों का साम्प्रदायिक परिवर्तन किया गया है। ये सारे दृष्टांत राही की रचनाओं में बहुत पहले संभावित समय की निरन्तरता में दर्ज हैं।

कतिपय राजनीतिक एवं साम्प्रदायिक लोगों के अस्वस्थ प्रचार के फलस्वरूप ही हिन्दू मुस्लिम का भेद एवं भाषाजन्य कटुता तथा विरोध का माहौल देश में बनता है जिसकी एक बानगी 'टोपी शुक्ला' के इस दृश्य में देखा जा सकता है - ''उर्दू के मौलवी साहब ने यह बात महसूस की कि उर्दू का क्लास छोटा हो गया है और अब कोई हिन्दू लड़का उर्दू नहीं पढ़ता।''

एक दिन उन्होंने अपनी बीवी से कहा - ''अगर यही रफ्तार रही तो उर्दू की पढ़ाई खत्म हो जाएगी।

''तो आख़िर हम पाकिस्तान क्यों नहीं चलते'' - बीवी ने पूछा

''दो साल के बाद रिटायर होना है - मौलवी साहब ने कहा - ''ज़िंदा तो यहां रहा, अब मरने के लिए वहां जाऊं ?''

यह संवाद सांप्रदायिकता और भाषा की कट्टरता को लेकर यथार्थ की समकालीनता का एक नया पाठ निर्मित करता है। वह उर्दू फ़ारसी जो कभी हिन्दुस्तान के आवाम की जिह्वा पर हिन्दी की चाशनी में घुलकर अदभुत मिठास पैदा करती थी बंटवारे के बाद से ही देश से बेदख़ल होने लगी। स्कूलों और मदरसों में पढ़ते हुए बच्चे उर्दू हिन्दी के पार्थक्य के बीच ही शिक्षा ग्रहण करते हैं। इसलिए धर्म और भाषा को लेकर संशय और एतराज का भाव बचपन से ही उनके भीतर घर कर जाता है। धर्मसत्ता और राजनीतिक सत्ता भाषा पर भी क़ाबिज़ होकर देश की सांस्कृतिक विरासत को छिन्न-भिन्न कर देती है। तभी तो विश्वविद्यालयों में उर्दू फ़ारसी का विभाग सूना रहता है। काशी के विश्वविद्यालय में किसी मुसलमान शिक्षक के संस्कृत पढ़ाने पर बबाल हो जाता है।

आज देश भूल रहा है कि रस सिद्धान्त के सबसे बड़े आचार्य पंडित राज जगन्नाथ, शाहजहां के दरबार में ही राज्याश्रित थे। मुग़ल दरबार में जितना उर्दू फ़ारसी और अरबी साहित्य का विकास हुआ उतना ही संस्कृत साहित्य का भी। सूफ़ी कवि अकबर शाह, पठान शासक सुल्तान नाज़िर शाह और सुल्तान हुसैन

शाह ने महाभारत और भागवत पुराण का बॉग्ला में अनुवाद करवाया था। क्या सैयद इब्राहिम उर्फ रसखान अमीर खुसरो, आलम शेख, उमर अली, नबाब वाजिद अली शाह जैसे मुसलमान भक्तकवियों के अप्रतिम योगदान को भुलाकर भारतीय संस्कृति का इतिहास लिखा जा सकता है ? भाषा और उसकी सामाजिकता का विस्तार ही हमारी संस्कृति का आधार है लेकिन आज सांस्कृतिक राष्ट्रवाद का बढ़ता हुआ लोकाचार इन सारी अमूल्य विरासतों को नकार कर एक भिन्न किस्म की राष्ट्रीय चेतना को विकसित कर रहा है जिसमें भाषा साहित्य कला संस्कृति सब 'हिन्दू', 'मुसलमान'दो शब्द से ही परिभाषित किए जा रहे हैं। इसी वर्ष सावन के महीने में ठेला, रेहड़ी और रास्ते के ढाबों पर दुकानदारों के नाम दर्ज करने का फरमान जारी किया गया था। मासूम रजा की कृतियों में राजनीति की ऐसी साजिशों के कई सूत्र तलाशे जा सकते हैं।

भारतीय राजनीति की विसंगतियां और उससे उपजा क्षोभ आम व्यक्ति को देश के भीतर कितना असहाय बना देता है, यह 'टोपी शुक्ला' उपन्यास को पढ़ते हुए महसूसा जा सकता है। 'टोपी शुक्ला' का चरित्र देश की विडम्बना का एक करुण अध्याय है।

अलीगढ़ यूनिवर्सिटी में हिन्दी साहित्य पढ़कर बेरोज़गार रह जाने वाला बलभद्र नारायण उर्फ़ 'टोपी शुक्ला' की कहानी आज के समय के उन तमाम लोगों की तरह अधूरा रह जाने वाले आदमी की कहानी है, जिसे सत्ता और व्यवस्था की दोधारी तलवार ने काटकर सामूल खण्डित कर दिया है। टोपी के भीतर एक स्नेहिल दुनिया की छवि उभरती है जो इस दुनिया में अपना हिस्सा तय नहीं कर पाती। उसकी विफलताओं की गाथा बहुत कारुणिक है।

टोपी ने एक नौकरी चाही, लेकिन कहीं हिन्दू होने के कारण नहीं मिली तो कहीं मुसलमान होने के कारण। अलीगढ़ की टोपी ने उसे आधा हिन्दू आधा मुसलमान के रूप में आधा-अधूरा आदमी बना दिया। टोपी शुक्ला की सरलता, सहजता और साफगोई में सामाजिक समरसता की टूटती आस्थाओं का विह्वल आर्तनाद है। इन्टरव्यू बोर्ड में विशेषज्ञों के साम्प्रदायिक मिजाज और बेतुके प्रश्नों को सुनकर टोपी निर्णय लेता है - ''जिस देश की यूनिवर्सिटी में यह सोचा जा रहा हो कि गालिब सुन्नी थे या शिया और रसखान हिन्दू थे या मुसलमान, उस देश में पढ़ाने का काम नहीं करूंगा।

उसके इस मार्मिक कथन में शिक्षण संस्थानों के भीतर सत्ता नियोजित साम्प्रदायिकता का वीभत्स चेहरा उजागर होता है। बहाली प्रक्रिया से लेकर पाठ्यक्रम निर्धारण तक में आज वहां सत्ता के इस वर्चस्व को देखा जा सकता है।
जीने की ऐसी दारुण स्थितियों में अपने भीतर के हौसले को बचाकर समय की कसौटी पर खरे उतरना आम आदमी के लिए कितना कठिन है, यह टोपी की जटिल मनःस्थिति से गुज़रते हुए बख़ूबी समझा जा सकता है। इफ़्फ़न, सकीना और टोपी की मित्रता शहर में बबाल का कारण बनती है। अलीगढ़ के 'रहमत कैफ़े'में टोपी पर हमला करने वाले के विरुद्ध प्राक्टर साहब को श्मशाद मार्केट में कोई गवाह नहीं मिलता लेकिन बलवा सारे पश्चिमी यू. पी. तक फैल जाता है और उस बलवा में आदमी की नहीं हिन्दू-मुसलमान लाशों की गिनती शुरू हो जाती है।

राही मासूम रज़ा ने यहां प्रायोजित दंगे के विरुद्ध मनुष्यता के पक्ष में एक बड़ा बयान दिया है - ''कितनी शर्म की बात है कि हम घर पर मरनेवाले और बलवे में मारे जाने वाले में फ़र्क़ नहीं कर सकते, जबकि घर पर केवल एक व्यक्ति मरता है और बलवाईयों के

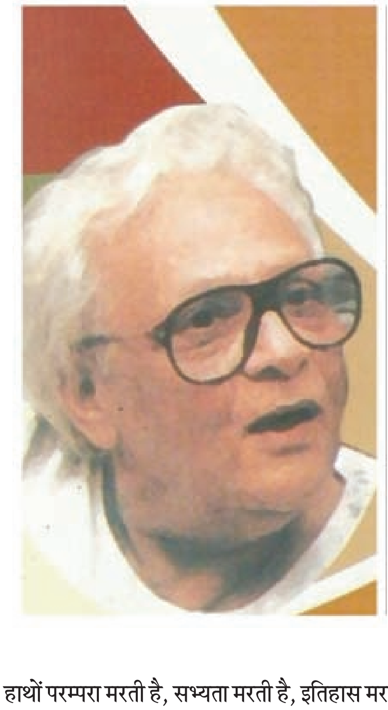

हाथों परम्परा मरती है, सभ्यता मरती है, इतिहास मरता है। कबीर की राम की बहुरिया मरती है। जायसी की पद्मावती मरती है। कुतुबन की मृगवती मरती है, सूर की राधा मरती है। वारिस की हीर मरती है। तुलसी के राम मरते हैं। अनीस के हुसैन मरते हैं। कोई लाशों के इस अम्बार को नहीं देखता। हम लाशें गिनते हैं। सात आदमी मरे। चौदह दुकानें लुटीं। दस घरों में आग लगा दी गई। जैसे कि घर, दूकान और आदमी केवल शब्द हैं, जिन्हें शब्दकोशों से निकाल कर वातावरण में मंडराने के लिए छोड़ दिया गया हो।''

'टोपी शुक्ला' उपन्यास में लेखक ने टोपी को एक प्रतीकात्मक अर्थ देते हुए राजनीति की स्थिति और नियति को भी बड़े साफ़ और बेलाग तरीके से दशार्या है - ''टोपी एक ही है। सफेद हो तो आदमी कांग्रेसी दिखाई देता है, लाल हो तो प्रजा सोशलिस्ट और केसरी हो तो जनसंघी।''

आगे वह कहता है - ''परन्तु अधूरापन और तन्हाई शायद इस युग की टोपियों की तकदीर है।''

इन शब्दों की प्रतीकात्मकता का फलक बहुत बड़ा है। इसमें देशकाल, व्यक्ति और उसकी नियति सब राजनीति में ही विन्यस्त है।

एक किरदार के रूप में बलभद्र नारायण टोपी शुक्ला के व्यक्तित्व का अधूरापन और तन्हाई इफ़्फ़न, सकीना और उसकी छोटी सी बेटी शबनम से पूरा होता है। समरसता की ज़मीन पर वे सब मिलकर एक ख़ूबसूरत दुनिया की परिकल्पना को मूर्त्त रूप देना चाहते हैं लेकिन हिंसक समय को यह नागवार गुजरता है और फिर सामूहिक उल्लास का स्वर विछोह के विलाप में बदल जाता है। ''इफ़्फ़न, सकीना और शबनम के जाने के बाद टोपी केवल एक बदन रह गया। एक खाली मकान। एक ऐसा मकान जो खाली तो था परन्तु किराए के लिए खाली नहीं था।''

टोपी की आत्महत्या यहां सत्ता और व्यवस्था पर कई प्रश्न खड़े करती है। साम्प्रदायिक हितों को साधने के लिए शिक्षण संस्थाओं में हमेशा स्वप्नदर्शी युवाओं को ही मुहरा बनाया जाता है। युवाओं के दुःख, क्षोभ और आक्रोश के पीछे भूख और बेरोजगारी की कितनी बड़ी त्रासदी है यह प्रश्न हमेशा नेपथ्य में रहता है। एक ताकतवर व्यवस्था उनके सपनों का सौदा करती है। उन्हें विचारहीन बनाकर उनकी रचनात्मकता को विध्वंस के रास्ते ले जाती है। फिर उसे बवाली या आत्महंता बनाकर अधिनायकवाद का जश्न मनाती है। तन्हाई के सलीब पर औंधी लटकी टोपी का आधा अधूरा वजूद आज भारतीय लोकतंत्र का एक दयनीय चेहरा है। यह आधा-अधूरा चेहरा आशंका, भय और नाउम्मीदी के भयंकर अंधकार में विचर रहा है। ऐसे में राही का सम्पूर्ण लेखन देश की साझी संस्कृति और समृद्ध विरासत की ज़मीन पर वर्तमान समय के भयावह दौर का मर्सिया पाठ करता हुआ रौशनी की एक लकीर खींचता है। इस मर्सिया पाठ में मानवीयता के पुनर्वास की कामना और भारतीयता की अवधारणा को संघनित रूप में देखा जा सकता है। ●

मुज़फ़्फ़रपुर , बिहार

संस्कृत साहित्य सम्राट महाकवि कालिदास

डॉ. प्रभात कुमार 'प्रभाकर'
कवि, साहित्यकार

कालिदास संस्कृत साहित्य में एक किंवदंती हैं जिन्हें 'गीतगोविंदम्' के रचयिता जयदेव ने 'कविकुलगुरु' की संज्ञा से संबोधित किया है। कहा जाता है कि संस्कृत साहित्य का अध्ययन व उसकी परिपूर्णता भी कालिदास की रचनाओं के साथ ही होती है। टीकाकार मल्लीनाथ का कथन है कि-

वाणीं काणभुजीमजीगणदवाशासीच्च वैयासिकीम्।
अन्तस्तन्त्रमरंस्त पन्नगविगुम्फेषु चाजागृत।
वाचामाकलयद्रहस्यमखिलं यश्चाक्षपादस्फुराम्
लोकेरभुद्य विदुषां सौजन्यजन्यं यशः।।

अर्थात् कणाद का वैशेषिक, वादरायण व्यासदेव का वेदांत , पतंजलि का व्याकरण, गौतम का न्याय आदि दर्शनों का जिसने अध्ययन कर लिया है वही कालिदास की अनवद्य रचनाओं का आस्वादन कर सकता है।

इसी संदर्भ में मल्लीनाथ आगे कहते हैं कि-

कालिदास गिरा सारं कालिदासः सरस्वती।
चतुरमुखोरथवा ब्रह्मा विरदुरनान्ये तु मादृशा।।

कालिदास की रचना के तत्वों को तीन ही व्यक्ति जान सके हैं एक विधाता(ब्रह्मा) दूसरी वाग्देवी और तीसरे स्वयं कालिदास। मेरे समान अल्पज्ञ सर्वथा असमर्थ हैं।

जर्मन कवि गेटे ने अपनी एक कविता में कालिदास की कृति 'अभिज्ञानशाकुन्तलम्' के संबन्ध में जो लिखा है उसका सारांश यह है कि- हे मित्र! यदि तुम पुष्प युवावस्था व फल सदृश प्रौढ़ावस्था का उत्तम फल जैसी आत्मा को आलोड़ित करने वाली श्रेष्ठ सामग्रियां एक ही स्थल पर ढूंढना चाहते हो तो कालिदास की 'शकुंतला' को पढ़ो। आत्मसंतोष एवं शांति ही नहीं अपितु स्वर्ग एवं मृत्युलोक की सकल समृद्धियाँ एक ही जगह पर मिल जाएगी। गेटे की उक्त कथन का संस्कृत में पद्यानुवाद श्री वासुदेव विष्णु मिराशी ने इस प्रकार किया है-

वासंतं कुसुमं फलं च युगपत ग्रीष्मस्य सर्वम्च यत्।
यच्चान्यन्मनसो रसायन मतः सन्तरपनम् मोहनम्।।
एकीभूतभूतमभूतपूर्वमथवा स्वलोकभूलोकयो।
ऐश्वर्यम् यदि वांछसी प्रिय सखे ! शाकुंतलम सेव्यताम्।।

एक यूरोपियन के ये उद्गार निश्चय ही कवि को कालजयी प्रमाणित करने के लिए पर्याप्त है।

गद्यकार वाणभट्ट कहते हैं -

निर्गतासु न वा कस्य कालिदासस्य सूक्तिषु ।
प्रितिर्मधुरसांद्रास मन्जरिष्विव जायते।

आम की मंजरी के समान कालिदास के काव्य की मधुर सूक्तियों को सुनकर किसके हृदय में आनन्द का उद्रेक नहीं होता।

कविवर सोडवल उनकी प्रशंसा में जो कहे हैं उस्ाका यह अर्थ है-१कालिदास की उज्ज्वल कीर्ति उनकी निर्दोष कविता के समान अमृततुल्य मधुर है। उनकी वाणी सूर्यवंश के वर्णन में समर्थ हुई है वैसे ही उनकी प्रसिद्धि भी समुद्र पार के देशों में पहुंच गयी।

आचार्य आनन्दवर्धन ने अपने ग्रंथ 'ध्वन्यलोक' में कालिदास की कीर्ति कौमुदी के बारे में कहा है- कवि तो अनेक हैं पर कालिदास की तरह महाकवि केवल दो- तीन या आधिकारिक पांच-छः व्यक्तियों को ही महाकवि की उपाधि दी जा सकती है। गोवर्धनाचार्य ने कालिदास के बारे में जो कहा है उसका भावार्थ यह है-'कालिदास की सूक्तियां सुकोमल और मनोहर रमणी के कण्ठस्वर की भांति पढ़ते समय भी आनन्दविभोर कर देते हैं।'

आचार्य मम्मट कालिदास की रचना को 'कांतासम्मिततयोपदेशयुजे' अर्थात कांता के कोमल उपदेशों की भांति उनके काव्य को सुकोमल और सरस बताया है।

इन सभी उक्तियों का आशय इतना ही है कि कालिदास एक श्रेष्ठ कवि थे। एक आलोचक ने तो यहां तक कहा है कि -

पुरा कविनां गणनाप्रसंगे कनिष्ठिकाधिष्ठित कालिदासः।
अद्यापि तत्तुल्यकवेरभावादनामिका सार्थवती बभूव।

अर्थात प्राचीन कवियों की गणना के संदर्भ में कालिदास का नाम कनिष्ठा (प्रथम) उंगली पर रखा जाता है। दूसरा कोई नाम इनके समकक्ष न होने के कारण दूसरी अंगुली का नाम ही 'अनामिका' (बिना नाम वाली) हो गया। जयदेव ने तो इन्हें 'कवियों का कुलगुरु' ही कह डाला। मुझे लगता है कि इस अतिशयोक्तिपूर्ण अलंकरण से विभूषित करते समय उन्होंने व्यास एवं वाल्मीकि की ऋषि मानकर अपवाद में रखा होगा।

कालिदास सौंदर्य के अन्यतम उपासक थे। प्रकृति प्रेमी के रूप में सौंदर्य की उनकी अपनी निजी अवधारणा थी- जो सुंदर व सुदर्शन है उसका हृदय कभी क्रूर व कुटिल नहीं हो सकता। साथ ही जो वास्तविक में सुंदर होता है उसे किसी आभूषण की आवश्यकता नहीं होती।

प्रकृति सुंदरी की स्वर्गीय सुषमा को वे मानव सौंदर्य में प्रतिमूर्त देखते थे। लगता है पंडित रामनरेश त्रिपाठी ने भी जो खण्डकाव्य लिखा है इनसे ही प्रभावित हो करके । नश्वर निखिल ब्रह्मांड में भी कालिदास ने चिर शाश्वत नैसर्गिक सौंदर्य की ही उपासना की। कालिदास की न केवल अपनी अभिनव अवधारणाएं थीं अपितु एक दिव्य दूरदर्शिता, पूर्ण दार्शनिक दृष्टिकोण भी था। प्रकृति को उन्होंने न सिर्फ एक महज उद्दीपन मात्र माना है और न ही नारी को निहायत भोग-विलास की उपभोक्ता उपादान। सर्वत्र अपने साहित्य में उन्होंने मानवीय सौंदर्य का मापन व मूल्यांकन प्राकृतिक पृष्ठभूमि में ही किया है। उनके नाटकों की सभी नायिकाओं (पार्वती, मालविका, उर्वशी आदि) के शारिरिक सौंदर्य की तुलना प्राकृतिक उपादानों से ही दी गयी है। प्रकृति को जड़, अचेतन, मूक व निष्प्राण मानने की बजाय उसका मानवीकरण कर मनोविकारों से मंडित कर डाला है। वस्तुतः मनुष्य ज्यों -ज्यों प्राकृतिक जीवन से पृथक होता जाता है उसकी अंतश्चेतना क्रमशः मंद व मंथर होती जाती है। कुछ लोग नारी विग्रह की विवेचना क्रम में उनके ऊपर अश्लीलता का आरोप भी लगाते हैं। पर, वे भूल जाते हैं कि प्रेम व प्रणय की पराकाष्ठा के पलों में भी उन्होंने अपने नायकों को सदैव परस्त्री के रूप वा आकर्षण से अलग रखा है। उनके प्रेम-प्रसंगों में उत्तप्त काम पिपासा की क्षणिक तृप्ति नहीं प्रत्युत प्रेम के प्रति पात्रों में संपूर्ण समर्पण का नैसर्गिक भाव है। आलोचक यह भूल जाते हैं कि वे उद्दाम उद्गार उन पात्रों का अपनी पत्नी के प्रति है

प्रेयसी के प्रति नहीं। इस प्रकार यत्किंचित वासनात्मक विचार है भी तो वो व्यक्ति विशेष की अपनी विवाहिता के प्रति है किसी व्यभिचारिणी वेश्या के प्रति नहीं।
जहां तक उनकी लोकप्रियता का प्रश्न है सरलता और मौलिकता उनकी निहायत निजी विशेषता थी। न अलंकारों का आग्रह है न पांडित्य का प्रदर्शन और छंदों के बन्धों का व्यामोह। मुझे एक भी ऐसा श्लोक न मिला जिसमें अप्रचलित धात्वर्थों के पीछे कभी सिर खपाना पड़ा हो। अपनी अभिनव अवधारणाओं के द्वारा उन्होने सदियों से उपेक्षित इतिवृत्तात्मक अतीतकालीन आख्यानों को इस प्रकार अति रंजीत अभिव्यक्ति प्रदान की है कि उनके उपजीव्य ग्रन्थ पीछे पड़ गए और कवि की कल्पना प्रसूत परिकल्पनाएं ही मुखर व मुख्य हो गई।
यद्यपि अलंकार उनकी सूक्ष्म संवेदनशीलता के सहचर व मानवीय मर्मज्ञता के अनुचर थे तथापि

उनकी 'उपमा' में विशेष अनुरक्ति और अभिरूचि थी। अनुप्रास तो अनायास ही उनकी पदावली के सहज अनुगामी होने को अभ्यस्त थे। अन्य अलंकरणों में उत्प्रेक्षा अनुपम अभिवृत्तियों से प्रबुद्ध पाठकों के प्रिय बन गए। दैनिक जीवन की सामान्य घटनाओं में शाश्वत सनातन शास्त्रों की गुढोक्तियां गुम्फित होकर सोने में सुहागे के सदृश संयोजित हो गयी। पात्रों की उत्सुकता, विह्वलता, क्रोध, अमर्ष, आक्रोश, आवेश आदि मनोभावों के तदनुरूप पाठक भी एकाकार हुए बिना नहीं रह पाते।
यह एक विचित्र विडंबना ही है कि कालिदास जैसे कालजयी साहित्यकार के सम्बंध में आजतक कोई प्रत्याभूत प्रामाणिक तथ्य उपलब्ध न होने से तत्संबंधी विवाद आजतक बरकरार है। कुल मिलाकर अड़तीस पुस्तकों के रचयिता के रूप में वे विश्वश्रुत हैं। किंतु मुख्यतः सात ग्रन्थों को ही प्रामाणिक माना जाता है जो ये हैं- अभिज्ञानशाकुन्तलम्, विक्रमोर्वशीय, मलविकाग्निमित्रम्, रघुवंश, कुमारसंभव, मेघदूत तथा ऋतुसंहार।
कृतित्व की उहापोहपूर्ण स्थिति उनके व्यक्तित्व के विषय में भी बरकरार है। क्योंकि उनकी न तो स्वलिखित कोई आत्मकथा है और न ही जीवनी। जीवन कृत का चरित के नाम पर जो कुछ भी उपलब्ध हैं वे केवल किंवदन्तियां व दंतकथाएं हैं, बावजूद इसके लोकमानस में उनकी लोकप्रियता हैरतअंगेज है। अधिसंख्य लोग इस बात से सहमत हैं कि वे उज्जयिनी के राजा विक्रमादित्य के नवरत्नों में से एक थे।
किंवदंती है कि बाल्यकाल में वे बिल्कुल बुद्धू थे जिनका नाम बोपदेव था। बोपदेव से कालिदास बनने की कथा बड़ी ही रोचक है। धूर्त पंडितों ने विद्यावती (विद्योतमा) नामक विदुषी राजकन्या को शास्त्रार्थ में पराभूत कर न केवल इन्हें विजयी घोषित करने का षड्यंत्र किया बल्कि उसने इसका विवाह भी करवा दिया। कुछ दिनों तक तो इनके मौनव्रत का नाटक चला किंतु कालांतर में एक दिन ऊंट को उष्ट्र कहने पर घर से निकाल दिया। विवाहिता के इस बहिष्कार की व्यथा से व्युत्पन्न वैराग्य ने इन्हें विश्व विख्यात विद्वान बना दिया। कहा जाता है कि देवी भगवती(काली) की उपासना के कारण ही इनका नाम कालिदास पड़ा। सरस्वती साधना से उनका स्नेह (सद्बुद्धि) प्राप्त कर जब वे घर वापस लौटे तो देवभाषा(संस्कृत) में ही पत्नी से किवाड़ खोलने को कहा- अनावृतं कपाटम्द्वारं देहिः अर्थात दरवाजे के बंद किवाड़ों को खोल दो। पत्नी ने साश्चर्य संस्कृत में ही पूछा कि-अस्ति कश्चित वाग्विशेषः अर्थात क्या तुम्हारी वाणी में कुछ विशेषता आ गई है? अपनी सहधर्मिणी की शंका समाधान हेतु उन्होंने इस प्रश्नवाक्य के प्रत्येक शब्द से एक एक ग्रन्थ की रचना कर दी। प्रथम शब्द से प्रथम पुस्तक 'कुमार संभव' का प्रारंभ हुआ। द्वितीय शब्द से 'मेघदूत' की रचना हुई तथा तीसरे शब्द से 'रघुवंश' रचा गया।
जन्म की भांति उनकी जन्मभूमि भी निर्णीत नहीं है। कुछ इन्हें बंगाली बताते हैं तो कुछ कश्मीरी, कुछ मालवा निवासी तो कुछ उत्तर प्रदीय आव्रजक। सबके अपने अपने तर्क हैं। जहां तक समय का सवाल है। अब तक अधिकांश लोग इन्हें ईसा पूर्व सत्तानवे वर्ष में इनकी उपस्थिति मानते हैं। बाकी बौद्धिक व्यवसायी इन्हें ईसा की चौथी से छठी शताब्दी तक घसीट लाए हैं।
इनकी कल्पना प्रसूत प्राकृतिक सुषमा के कारण कुछ इन्हें कश्मीरी ब्राह्मण बतलाते हैं। बंगाल के शैव तथा शाक्त मतावलंबी इनकी रचनाओं से शिव व शक्ति तत्वों व तथ्यों का संकलन कर नदिया निवासी बताते हैं। इस प्रकार हिमालय व गंगा के वर्णनों का आधार मानकर कुछ लोग इन्हें वर्तमान उत्तरप्रदेश के पूर्वांचल का जातक मानते हैं तो शेष उत्तरांचल के पर्वतीय जिलों टिहरी , गढ़वाल, चमोली ,अल्मोड़ा, उत्तरकाशी आदि में जन्मस्थान को निर्धारित करते हैं। पाश्चात्य विद्वानों ने भी इन्हें भिन्न भिन्न स्थानों का बताया है।
कालिदास वर्णाश्रम व्यवस्था के भी समर्थक थे। शायद उनदिनों यह व्यवस्था यह व्यवस्था समाज के सुव्यवस्थित संचालन का सर्वश्रेष्ठ सिद्धान्त था। तब उनमें शायद वो विकृतियां नहीं आयी थी जो कालांतर में हिन्दू समाज को खंडित करने का कारण बनी।
मेरा यह भी मानना है कि उनका अभावों से कभी वास्ता न पड़ा क्योंकि उनके किसी भी पुस्तक में मुझे कभी भी दरिद्रता, अभाव व गरीबी के वर्णन नहीं मिले हैं। यत्र-तत्र उनके विनोदवृति की झलक अवश्य मिलती है। नाटकों के विदूषकों के माध्यम से उनकी हास्य वृति ही अभिव्यक्त हुई है। उन्हें साहित्य, संगीत व कला तीनों का पर्याप्त ज्ञान था। संभवतः वे स्वभावतः घुमंतू प्रवृति के प्राणी थे। क्योंकि विविध प्रदेशों के प्राकृतिक सौंदर्य का सजीव चित्रण मात्र कल्पना से संभव नहीं था।
लंकावासियों में एक कथा प्रचलित है जिसके अनुसार कवि कालिदास सिंहलद्वीप के अपने समकालीन राजा कुमारदास के काव्य 'जानकीहरण' के प्रशंसक थे। यह सुनकर राजा ने उनको आमंत्रित कर खूब आवभगत की। आतिथ्य के उन्हीं दिनों दैवदुर्विपाक वश कालिदास की घनिष्ठता महल की एक सुंदर दासी से हो गया। कहा जाता है कि यही उनकी मृत्यु का कारण बनी और वहीं उनकी मृत्यु भी हुई। पर, इस संबन्ध में विशेष विवरण उपलब्ध नहीं है। इतना जरूर कहा जाता है कि कुमारदास इनकी मृत्यु से इतने दुखी हुए कि कवि की चिता में कूदकर आत्महत्या कर ली। कुछ लोग तो कहते हैं कि लंका के दक्षिणी भूभाग में इन दोनों की संयुक्त समाधि भी मौजूद है। पर, मैं तो अभी तक वहां गया नहीं, अतः निश्चित तौर पर कुछ कहना संभव नहीं है। ●

बारो, बेगूसराय

वर्तमान साहित्य और पाठक

सैयद असद आजाद

साहित्य अपने समय का वर्तमान होता है। यानी किसी भी कालखंड के साहित्य पर नज़र डालकर उस समय की हलचल और गतिविधियों को आसानी से समझा जा सकता है। साहित्य का असर समाज पर पड़ता है। और समाज का असर भी साहित्य पर पड़ता है। जैसा समाज होता है, उसी तरह का साहित्य होता है। जब समाज उन्नति, प्रगति और वैभवता की ओर उन्मुख होता है, तो वह साहित्य में भी इसी रूप में समाता है।

जब-जब साहित्य सामाजिक सरोकार से विमुख होता है, तो पाठक के मन-मस्तिष्क में भी साहित्य से वैराग्य-भावना बढ़ती जाती है। साहित्य का काम समाज को कंघी की तरह संवारना है। और जब-जब साहित्य ने इस नियम के क़ायदे-क़ानून को आत्मसात किया है, तो पाठक का साहित्य के प्रति मोहभंग की स्थिति भी समाप्त हुई है।

वर्तमान साहित्य अपनी पहुंच पाठकों तक बनाने में सिद्धहस्त नहीं दिख रहा है। मौजूदा साहित्य की पहुंच पाठकों से दूर होती जा रही है। इसका कोई एक कारण नहीं है, जिसे एक उदाहरण से बता दिया जाए। ऐसा कई कोणों और कई कारणों से हुआ है। आज जब साहित्य में तेज़ी के साथ लेखन हो रहा है। आज प्रकाशन की गतिविधियों में तेज़ी आई है। आए दिन पुस्तकों की संख्या में इज़ाफ़ा हो रहा है। रोज़ ब रोज़ नए प्रकाशन का उदय हो रहा है। लेकिन पाठकों को जोड़ने की सारी क़वायद पीछे छूटतीं जा रही हैं। पाठक के सामने अब गंभीर साहित्य पेश नहीं किया जा रहा है। और कहा जा रहा है कि अब पाठक गंभीर साहित्य को पसंद नहीं करता है। उसे टीवी जैसा मनोरंजक साहित्य चाहिए। उसे मंच जैसी मनमोहक कविताएं चाहिए। सच तो यही है कि अब भी पाठकों का स्वाद नहीं बिगड़ा है। उनके स्वाद को ही बिगाड़ दिया गया है।

गंभीर साहित्य से समाज बनता है। और हल्के-फुल्के साहित्य और कविता के नाम पर मंच से चुटकुला सुनाने की परंपरा ने पूरे साहित्य को विनाश के कगार पर पहुंचा दिया है। पाठकों को भ्रमित कर दिया गया है कि आज का साहित्य चुटकुला और हंसाने वाला साहित्य होना चाहिए। दूर्भाग्यपूर्ण स्थिति ही इसे कह लीजिए कि आज के पाठक में अब इतनी क्षमता भी नहीं रही कि वह चुटकुलानुमा साहित्य और गंभीर साहित्य या कहें कि वास्तविक साहित्य में अंतर कर सके। जब आज का ज़्यादातर पाठक गंभीर और चुटकुले वाले साहित्य में अंतर नहीं कर पाता है, तो फिर वह गंभीर साहित्यकार और मंचीय चुटकुलेबाज़ साहित्यकारों में क्या अंतर कर पाएगा?

साहित्य द्रष्टा और तथागत महाकाव्य के प्रणेता महाकवि आचार्य

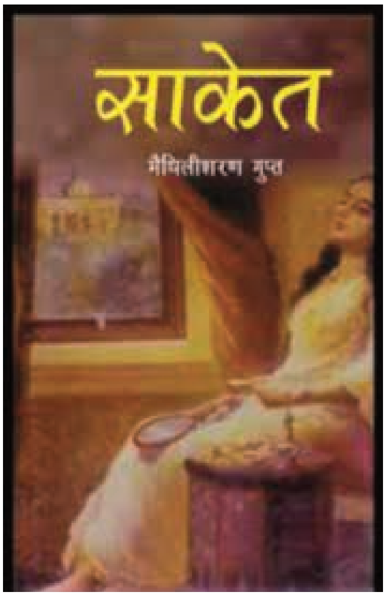

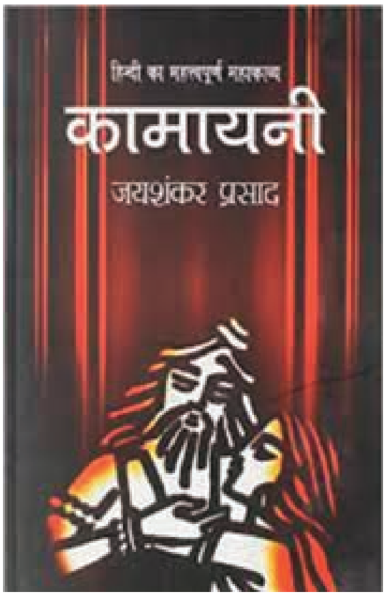

कुमुद विद्यालंकार ने बड़ा ही मार्मिक और सटीक व्याख्या साहित्य के गिरते स्तर पर की है। उनके यह कथन हर युग के लिए कालजयी हैं। और साहित्यकारों के लिए प्रेरणादायक। उन साहित्यकारों के लिए तो एक मार्गदर्शन भी हैं, जो साहित्य में अभी पूरी तरह भटके नहीं हैं। उनकी यह चार पंक्तियां आज के युवा और अच्छे साहित्याकारों के लिए एक लैंप पोस्ट है।

सब साहित्य भ्रष्ट कर डाला
इन कलयुगिया छौड़ों ने
फैला दी गंदगी विश्व में
बेलगाम कुल बोरों ने

वाक़ई साहित्य से पाठकों की अगर मोहभंग की स्थिति एक लंबे समय तक बनी रहती है, तो इसका दायित्य मौजूदा साहित्य संसार को रचने वाले साहित्याकारों पर जाता है। उन्हें अपने साहित्य में सरोकार की भावना की पुट पैदा करनी होगी। साहित्य का सरोकार पाठक हैं। पाठक कई कारणों से भले साहित्य से दूरी बना लें। लेकिन साहित्य में गिरावट के कारण अगर पाठक की साहित्य से दूरी बनती है, तो इसकी ज़िम्मेदारी साहित्यकारों को लेनी होगी। और अपने गिरेबान में झांकना होगा। पाठक का काम समझौता नहीं करना है। पाठक साहित्य से समझौता करे भी तो क्यों करे? उसे अपने हिसाब का साहित्य चाहिए। उसे संदेश देने वाला साहित्य चाहिए। उसे उसकी कमी बताने वाला साहित्य चाहिए। उसे रास्ता दिखाने वाला साहित्य चाहिए। अगर साहित्य रास्ता दिखाने की जगह उसे गुमराह करे, तो फिर वह उस साहित्य से कब तक बंधा रह सकता है? साहित्य का काम ऊर्जा प्रदान करना है। साहित्य का काम समाज को व्यवस्थित करना है। साहित्य अगर समाज को तोड़ने लगे, तो पाठक उस साहित्य में अपना समय क्यों बर्बाद करना चाहेगा?

मौजूदा समय सच्चे और अच्छे साहित्य के रचना का है। यह समय साहित्याकारों से कुछ आग्रह कर रहा है। यह काल खंड साहित्यकारों से कुछ विनती कर रहा है। यह घड़ी कह रही है कि कुछ अच्छा लिखो। बेहतर लिखो। आर्दश लिखो। और भरोसे का लिखो। अगर आज के साहित्य में इन सब आग्रहों का अभाव है, तो फिर पाठकों के सिर पर साहित्य से दूर होने का ठीकरा कैसे फोड़ा जा सकता है?

कितना भी गंभीर पाठक क्यों न हो। वह साहित्याकार के सामने एक शिष्य ही होता है। जब साहित्यकार गुरु होता है, और पाठक शिष्य, तो फिर शिष्य को राह दिखाना किसका कर्तव्य बनता है? साहित्यकार अगर शिक्षक की भूमिका में रहे, तो पाठक का कल्याण है। और एक अच्छे शिक्षक को उसका शिष्य जीते ज़िंदगी भी चाहता है। और मरने के बाद भी उनका गुणगान करता है। आज क्यों लोग प्रेमचंद को याद करते हैं? क्यों निराला का स्मरण आता है? क्यों मैथिलीशरण गुप्त और लोग दिनकर को पढ़ना चाहते हैं? क्यों मैंने महाकवि कुमुद विद्यालंकार को इस आलेख में उदाहरण के तौर पर याद किया? ऐसा इसलिए कि इन साहित्यकारों ने देश और समाज को एक नई दिशा दी। समाज को एक राष्ट्र-निर्माता की तरह शिक्षित किया। नतीजे में उनका एक ऐसा पाठक वर्ग बना, जो पीढ़ी दर पीढ़ी उनकी रचना के मोहपाश से जुड़ा और बंधा रहा है।

इसलिए वर्तमान साहित्य से पाठकों के सरोकार और संबंध को ज़िंदगी देने के लिए मौजूदा साहित्य को और भी सशक्त करना होगा। पाठक आज भी अच्छे साहित्य के प्रति लगाव रखते हैं। उन्हें उनके मन के मुताबिक़ जब साहित्य नहीं मिलता है, तो फिर उनका साहित्य से मोहभंग होने की स्थिति आने से पहले उनका दुराव हो जाता है। इस दुराव को रोकना साहित्यकारों का काम है। लेखन को समाज उपयोगी बनाकर ही पाठक को जोड़ा जा सकता है। किसी भी मनोरंजन की अपनी सीमा होती है। चटनी सबको पसंद है। लेकिन कभी चटनी दाल, रोटी और सब्ज़ी का स्थान नहीं ले सकती है। ऐसा कभी नहीं हो सकता है कि लोग चटनी को रोटी जितना खाएं। और रोटी को चटनी जितना? साहित्यकारों को यह गांठ बांध लेना चाहिए कि साहित्य की गंभीरता ही पाठकों के अलगाव और दुराव को दूर कर सकती है। और मोहभंग की स्थिति को रोक सकती है।

(लेखक बाल कथाकार और 'मेघ देवता' के लेखक हैं)

उमाशंकर सिंह परमार
लेखक, साहित्यकार

उत्तर आधुनिकता व विमर्शों के सवाल

आधुनिकता और अस्मिता का बोध ज़रूरी

यह दौर अस्मिताओं के उभार का दौर है। उत्तर आधुनिकता का दौर है। उत्तर आधुनिकता ने सांस्कृतिक क्षेत्र में व वैचारिक क्षेत्र मे खलबली मचा दी है। तमाम विमर्शों का उभार हुआ है, जो कुछ परंपरा से हाशिए की वस्तु समझी गई, उसे मुख्य केंद्रिकता मे आने का रास्ता सुझा रहा है उत्तर आधुनिकता। विचारधारा के स्तर पर वाम जनवादी लेखन इसी हाशिए की बात करता है। लेकिन वह इन हाशिए के समाजों को वर्गीय नज़रिए से देखता है। उत्तर आधुनिकता इसका विरोध करती है। वह हाशिए को सर्वांग रूप मे एक साथ देखने की आदी नहीं है। वह सबको पृथक वर्ग के रूप मे देखती है। और विचारधारा के स्तर पर जनवाद को उत्तर आधुनिकता जबरदस्त चुनौती दे रही है। उत्तर-आधुनिकता पर विचार करने से पहले आधुनिकता की संकल्पना व उत्तर-आधुनिकता के अन्तःसंबंधों को समझना जरूरी हैं।

उत्तर-आधुनिकतावाद केंद्रीय वर्चस्ववाद का विरोध करती है। और स्थानीयता तथा उसकी भिन्नताओं पर बल देती है। लेकिन विचारधारा सबको समूह के रूप मे देखती है विचारधारा वर्ग की पुकार है तो उत्तर-आधुनिकता में विकेंद्रीकरण, अलग पहचान, अलग आवाज और विखंडन की पुकार है। उत्तर-आधुनिकतावाद अब बहु-संस्कृतिवाद या बहुलतावाद पर आधारित विमर्श है। उत्तर-आधुनिकता बहुकेंद्रीयता की संकल्पना को लेकर चलती है और यह बहुकेंद्रीयता व्यक्ति की अपेक्षा समूहों की केंद्रीयता है। भारत में विविधतापूर्ण समाज विद्यमान है, जहां पर किसी एक विमर्श को संबोधित करना संभव ही नहीं है। इन सबके बावजूद भी हमारा समाज अभी भी स्त्री, दलितों, आदिवासियों और अल्पसंख्यकों की अभिव्यक्तियों और उनकी सामूहिक अस्मिता के प्रति अत्यंत अनुदार और असहिष्णु है। लेकिन उत्तर-आधुनिक समाज में इन समूहों की आवाज़ को सहज भाव से स्वीकार किया जाना अपेक्षित है। वर्गीय चेतना समाज मे दो वर्ग मानकर चलती है- शोषक और शोषित। लेकिन उत्तर आधुनिकता इसमे जातीयता का प्रवेश देकर शोषक और शोषित के भीतर भी विभेद और हाशिए की संभावनाएं पैदा कर चुकी है।

उत्तर आधुनिकता का कहना है कि विश्वस्तर पर उत्पन्न नया मार्क्सवाद स्थानीयता के बरक्स सार्वभौमिकता की बात करता है। वह हाशिए की पहचान नहीं करा पा रहा है अस्तु उसे स्वीकार करने का कोई कारण नही है। उत्तर आधुनिकता वामपंथी विचारधारा के विरुद्ध सबसे बडी वैचारिक चुनौती है। इसके मुख्य विचारक फूको ने तो वर्ग संघर्ष को ही चुनौती दे दी। उन्होने कहा है कि मुख्य बल शक्ति है। उनके अनुसार शक्ति के रूप मे कुछ भी हो सकता है ज्ञान भी, सत्ता भी, संविधान प्रदत्त अधिकार भी शक्ति का स्रोत हैं। हमारे सामाजिक संबंधों का आधार शक्ति है। परिवार मे भी शक्ति का प्रभाव है। शक्ति संबंधों के कई स्तर और भेद हैं। इनका सूक्ष्मता से विश्लेषण किया जाना चाहिए।

समाज का एक बड़ा हिस्सा अवर्गीय है। वह वर्ग से बाहर है और इन अवर्गों को लेकर साहित्य और समाजशास्त्रियों ने कुछ भी नही किया न इन्हे चिन्हित किया गया न इन्हे विश्लेषित किया गया है। उत्तर आधुनिकता इन अवर्गों की पहचान कराती है। इन्हे हाशिया समझती है। उत्तर आधुनिकता ने सबसे बड़ा लाभदायक काम यह किया है कि एक नए ढंग से सचेत और सक्रिय होने की चुनौती पैदा करने के साथ-साथ नई बहसों और नए आंदोलनों की संभावना भी पैदा कर दी है।

भारतीय साहित्य में दलित विमर्श, स्त्री विमर्श, अल्पसंख्यक विमर्श और आदिवासी विमर्श जैसी प्रवृत्तियों के उभार की व्याख्या इस दृष्टि से की जानी आवश्यक है। इसी प्रकार दूसरी यह भी ध्यान देने की बात है कि उत्तरआधुनिक विमर्श कला, साहित्य और संस्कृति की व्याख्या में अंतपाठीयता और पुनर्पाठ पर ज़ोर देता है। यहां कोई एक पाठ अंतिम नहीं है और न ही स्वायत्त। इससे यह ज़रूरत महसूस होती है कि प्राचीन से लेकर आधुनिक काल तक के साहित्य का पुनर्पाठ कल तक हाशिए पर रहे समुदायों की दृष्टि से करना आवश्यक है। यह अवधारणा वैचारिक रूप से वाम समीक्षा पद्धति का प्रतिरोध है।

कुल मिलाकर कहा जा सकता है कि उत्तरआधुनिक विमर्श अनुपस्थिति को दर्ज करने वाला विमर्श है। यानी जो कल तक अनुपस्थित था, वह आज उपस्थित होने का संघर्ष कर रहा है। विमर्शों में सबसे महत्वपूर्ण सवाल जेंडर का है यह सवाल अठारहवीं शताब्दी से उभर कर सामने आया है। स्त्री सदियों से उपेक्षित अस्मिता के रूप मे जानी जाती रही है। वह दोहरे सामंतवाद से जकड़न का शिकार रही है। एक तरफ पुरुष के अपरिमित अधिकार हैं, तो दूसरा उन अधिकारों को स्वीकृति देते समाज की सामाजिक परम्पराएं हैं। समाज की समांती और परंपरागत सोच में स्त्री के लिए कोई विशेष जगह नहीं रही है, या तो उसे देवी की तरह परखा गया है या फिर उसे सुकोमल प्रेमिका की तरह मूल्यांकित किया गया है। स्त्रीवाद दोनों नज़रिए का विरोध करता है।

स्त्रीवाद ने इधर काफ़ी हद तक पुरुषवादी चिंतन व मानसिकता से अपने आपको विमुक्त किया है। लेकिन किसी परिवर्तनकारी विचारधारा से अलग होना थोड़ा खटकता है। नारीवाद एक आंदोलन ही है बल्कि साहित्य की एक व्यापक समझ भी है रचना का एक आयाम भी है। अस्तु इसे किसी न किसी प्रगतिशील विचारधारा से युक्त होना चाहिए। लेकिन दुख की बात है कि यह आंदोलन गांव और क़स्बों की दलित शोषित महिलाओं तक अपनी पैठ नही बना सका है। यह केवल शहरी पढी लिखी अकादमिक व उच्चवर्गीय स्त्रियों तक सीमित रह गया है। इससे इसमे वैचारिक विचलन के साज साथ इसकी

आंदोलन धर्मी व्यापकता पर भी बुरा असर पड़ा है। साहित्य की भी अपनी वैचारिकी होती है। और उस विचार का एक प्रारूप।

शहरी उच्चवर्गीय विचारधारा के कारण स्त्री विमर्श का जो भविष्य निर्धारित किया जा रहा है, वह अधिक भतावह और अंतर्विरोधों से भरा है। स्त्री अपनी सामाजिक और जैविकीय बनावट के कारण एक पृथक वर्ग के रूप में मान्यता प्राप्त कर चुकी है। हालांकि उनकी सामाजिक अवस्था समाज की जातीय और वर्गीय संरचना पर निर्भर करती है। लेकिनआज जिस तरह का स्त्रीवाद विभिन्न लेखिकाओं और कवियित्रियों से प्रचारित किया जा रहा है, उसमे सामाज की जातीय व वर्गीय संरचना व समाज मे प्रभावी सामंती वर्चस्व पर कोई हस्तक्षेप नहीं है। जबकि इतिहास से प्रमाणित है कि स्त्री को अधिकार विहीन करने व व्यवस्था में भागीदारी से वंचित करने में संपत्ति और उसके स्वामित्व का बड़ा हाथ है। स्त्री अधिकार व सुख सुविधा का यथार्थ आकलन वग़ैर सामाजिक जातीय अवस्थिति के नहीं हो सकता है। सवर्ण जाति की स्त्री को हम दलित स्त्री के साथ व्यवहारिक रूप मे नहीं खड़ा सकते हैं। हालांकि अपनी अपनी वर्गीय स्थिति मे दोनो दोयम दर्जे मे हैं फिर भी शोषण और यातना की मात्रा में अन्तर अवश्य है।

जिन अधिकारों को लेकर इस देश में बड़ा आंदोलन खड़ा हो जाना चाहिए, वो महज़ चटखारे पूर्ण काग़ज़ी बहसों मे ख़त्म हो गए। यह स्थिति गंभीर है। इधर कुछ वर्षों से देखा जा रहा है कि दैहिक आज़ादी को लेकर स्त्री लेखन मुखर है यह उचित मांग है। लेकिन अभिव्यक्ति के स्तर पर अवैचारिक असंगतियां बदबस्तूर जारी हैं। इस आज़ादी का प्रारुप बाज़ावाद ने व बाजारवाद के साहित्यिक आतंकवाद उत्तर आधुनिकता ने गढा है। देह मुक्ति एक आयामी नही होती देह मुक्ति ग़ुलामी के ख़िलाफ़ भागीदारी का सवाल बनना चाहिए। लेकिन यह मुक्ति अभिव्यक्ति के स्तर पर महज़ कामुक अवमुक्ति बनकर रह गई है। किसी भी भाषा का कोई भी बड़ा विमर्श दो-चार लेखकों के दम पर लंबे समय तक नहीं चलता है। और दूसरी बात कि वह किसी एक ही धारा में विकसित नहीं होता है। यदि किसी साहित्यिक विमर्श का मूल्यांकन दो-चार लेखकों को आधार बना कर किया जाए और निष्कर्ष भी दे दिया जाए, तो यह साहित्य के साथ ही साथ उस विमर्श के भी बड़े परिप्रेक्ष्य की उपेक्षा है। हिंदी साहित्य में भी स्त्री विमर्श कई धाराओं में विकसित हुआ। और उसका मूल कारण लेखिकाओं का अपना अनुभव जगत और अपनी अलग-अलग सामाजिक स्थिति है।

स्त्रीविमर्श के बाद दूसरा महत्वपूर्ण विमर्श दलित और आदिवासी विमर्श है। दलित विमर्श का सबसे बडा केंद्र मराठी साहित्य रहा है वहां यह हिन्दी की तरह भक्तिकाल से ही प्रभावी रहा है। मराठी के दलित लेखन ने अपने आपको प्रतिक्रियावाद से मुक्त कर लिया। इसी कारण वह मराठी साहित्य मे मुख्यधारा का साहित्य बन गया। लेकिन हिन्दी में यह प्रतिक्रियावाद का सहारा लेकर गाली गलौच तक की स्थितियों व जातिवादी अवधारणाओं से मिलजुलकर आज प्रगतिविरोधी शक्तियों के साथ खड़ा है। ऐसे तो दलित साहित्य की शुरूआत संत परम्परा के कवियों के ज़रिए सदियों पहले हो चुकी थी। बाद में आधुनिक काल में प्रेमचंद, निराला, प्रसाद, नागार्जुन आदि लेखकों ने इस परम्परा को और समृद्ध किया । लेकिन दलित, अम्बेडकर की ही विचारधाराओं की सराहना करते हैं, उन्हें मूल मानते हैं। उनका मानना है कि भारत में सामाजिक गड़बड़ी का जड़ वर्ण व्यवस्था है, जो कि सहज समाप्त होगा ; ऐसा तो नहीं लगता। और जब तक यह समाप्त नहीं होगा,न तो जाति विवाद ख़त्म होगा, न ही छूआछूत। यहीं से संगठित होकर, दलित आन्दोलन की शुरूआत हुई। और यही आंदोलन बाद में जनसंघर्ष का रूप लिया ।और इन्हीं जनसंघर्षों से दलित साहित्य या दलित विमर्श की परम्परा विकसित हुई। हर एक जाति अपने से निचली जाति के लिए शोषक है सामंती है। इस व्यापक अंतर्विरोध को समझना जरूरी है। हम नही समझ पाए इसलिए विमर्शों का जनविरोधी रूप हमारे सामने उपस्थित है। जो युगबोध और जनचेतना का नुक़सान करके जनविरोधी प्रतिक्रियावादी मंसूबों की पूर्ति कर रहा है। उत्तर आधुनिकता इतिहास और विचार को नकारकर खंडों मे देखने की हिमायती है। उनकी यह दृष्टि पूंजीवाद और बाज़ारवाद के समर्थन मे है। आज स्त्री को बाज़ार की वस्तु बनाने मे सबसे बड़ा योगदान दैहिक स्वतंत्रता का है । देह की आज़ादी और संपत्ति के हक़ में अंतर है।

आदिवासी विमर्श एक ऐसा विषय है, जिसमें समाज के रहन-सहन, उनकी संस्कृति,परंपराएं, अस्मिता, साहित्य और अधिकारों के बारें में विस्तृत चर्चा की जाती है। आदिवासी समाज सदियों से जातिगत भेदों, वर्ण व्यवस्था, विदेशी आक्रमणों, अंग्रजों और वर्तमान में सभ्य कहे जाने वाले समाज (तथाकथित मुख्यधारा के लोग) के ज़रिए दूर-दराज जंगलों और पहाड़ों में खदेड़ा गया है। अज्ञानता और पिछड़ेपन के कारण उन्हें सताया गया है। अक्षरज्ञान न होने के कारण यह समाज सदियों से मुख्यधारा से कटा रहा, दूरी बनाता रहा। भारत में यह जनजातिय समाज विभिन्न भागों में तथा विभिन्न भाषिक प्रदेशों में हैं। आदिवासियों की लोककला साहित्य सदियों से मौखिक रूप में रहा हैं। उनकी भाषा का अदुरुस्थ व्याकरण, लिपि का विकास न होने के कारण साहित्य जगत में आदिवासी रचनाकार और उनका साहित्य ग़ैर-आदिवासी साहित्य की तुलना में कम मिलता है। आज़ादी के बाद प्रकाश में आए दलित और स्त्री-विमर्श के बाद का विमर्श आदिवासी विमर्श है। हिंदी साहित्य के संसार में स्त्री और दलित विमर्श जिस प्रवृत्ति के साथ आगे आया है, उससे भिन्न आदिवासी साहित्य है।

जब हम आदिवासी साहित्य को देखेंगे तो स्त्री ने अपनी बड़ी तादात में उपस्थिति दर्शाई है। आदिवासी समाज में खेती का कार्य हो, श्रम, शिकार हो या लड़ाई की बात हो हर समय स्त्री ने पुरुषों के साथ कंधे से कंधा लगाकर उपस्थिति दर्ज की है। इसी कारण आदिवासी साहित्य में स्त्री के बहुत से सवालों को महत्व मिला है। आदिवासी साहित्य अपनी रचनात्मक उर्जा आदिवासी विद्रोह की परंपरा से लेता है। इसलिए आदिवासी साहित्य को अन्य साहित्य की तुलना में विद्रोही साहित्य या जीवनवादी साहित्य कहा जाता है। आदिवासियों पर मुख्यधारा के लेखक भी ख़ूब लिख रहे हैं। राजनैतिक रूप से हिन्दुस्तान का दलितवाद हिन्दूवाद का सबसे बड़ा पुरोधा बनकर उभरकर सामने आया है। ऐसे खतरों को देखते हुए सही और संगत विमर्श की पहचान बेहद ज़रूरी है। यह पहचान केवल फ़ामूर्लों और वैदेशिक सैद्धांतिकी के बूते नहीं की जा सकती है। न ही यह पहचान प्रचलित मिथकों और वर्गीय चिंतन की सहायता से की जा सकती है।

दलित और स्त्री विमर्श महज़ फैशन बनकर लिखा जा रहा है। लगभग यह समझ बन गई है। आज आधुनिकता और अस्मिता का बोध ज़रूरी है। यह संकट जनवाद को बचाने का है इस रीति को विकसित करने का है। इसलिए स्त्री दलित और आदिवासी समुदाय के प्रति जनवादी पक्ष रखने वाला साहित्य आज का समकालीन साहित्य है। और इस समकालीनता का पक्ष पोषण करने वाले ए विमर्श आज के कविता प्रतिमान बनने की पूरी योग्यता रखते हैं। ●

बबेरू जनपद बांदा

अस्मिता का संघर्ष और हिन्दी ग़ज़ल

डॉ. भावना
वरिष्ठ साहित्यकार

वर्तमान साहित्य 'विमर्श' के बग़ैर अधूरा है। अस्मिता का अर्थ होता है अपनी सत्ता की पहचान यानी आत्मसम्मान के प्रति सचेत होना। हिंदी साहित्य में मुख्य रूप से तीन विमर्श प्रचलन में रहे हैं। यह तीन विमर्श थे -दलित, नारी और आदिवासी विमर्श। इन तीनों विमर्शों में शोषित समाज के हक़ के लिए लेखन किया जाता है। इन विमर्शों का मुख्य उद्देश्य उनके जीवन संघर्ष पर विचार करते हुए उनकी वास्तविक स्थिति को बताना। और उनके प्रति मानवीय संवेदना को उभार करके उनकी दशा में परिवर्तन लाना है।

अब तक नारीवादी आंदोलन अपने लिए आत्म नियंत्रक मापदंडों को तो स्पष्ट तौर पर रेखांकित नहीं कर पाया है। लेकिन स्त्रियों को पराधीन बनाकर रखने वाले कारकों को चिन्हित करने में सफल अवश्य हुआ है। परिवार, समाज, धर्म राज्य जैसी संस्थाएं प्रेम, रोमांस, रूमानियत, नज़ाक़त, सुकुमारता, सुंदरता, गोल-मटोलपन ,डरपोकपन जैसे अभि लक्षणों को स्त्रियोचित होने की वजह से प्रशंसित और पुरस्कृत कर स्त्रियों का अनुकूलन करती है। इस प्रकार नारीवादी सभ्यता के मौजूदा स्वरूप को लैंगिक अनुकूलन की सभ्यता मानी जा सकती है। मानव सभ्यता को परिचालित करने वाली प्रमुख संस्थाएं चाहे वो धर्म हो या राज्य, परिवार हो या समाज या विवाह सभी चीज़ें पुरुष वर्चस्ववादी रही हैं। बाज़ार, पूंजी और तकनीक का चरित्र भी पुरुष वर्चस्ववादी ही है। बराबरी की मंज़िल अभी कोसों दूर है। बराबरी का दर्जा मिलने के बाद ही स्त्रियों को एक मानव के रूप में स्वीकृति मिल पाएगी। इक्कीसवीं सदी में भले ही मुट्ठी भर स्त्रियां समाज में सफलता का कृतिमान गढ़ रही हों, पर अधिकांश स्त्रियां आज भी अपनी पहचान को लेकर संघर्षरत हैं। कुल मिलाकर यह कहा जा सकता है कि आज का तथाकथित प्रगतिशील समाज स्त्री को अब भी दोयम दर्जे का ही मानता है। जब तक स्त्री को समाज की मुख्यधारा में मान्यता नहीं दी जाएगी, तब तक अस्मिता मूलक विमर्श की प्रासंगिकता बनी रहेगी। हिन्दी गजल में स्त्री विमर्श किस तरह अभिव्यक्त हुआ है, इसे बताने के लिए मैं कुछ ग़ज़लकारों के शेर पेश कर रही हूं।

अनिरुद्ध सिन्हा ने बेटियों की क़िस्मत को अपने शेर से उद्धृत किया है -

रंग मेंहदी के पैरों के छूटे नहीं
शर्म का आचरण रोटियाँ खा गई

ओम प्रकाश यती ने मेहनतकश महिलाओं के जीवन की त्रासदी के साथ उनकी ज़िंदगी को बड़ी बारीक़ी से देखा है। उनके शेर देखें -

खेत में काम वो करती जाती ध्यान में रखती चूल्हे को
मुड़ -मुड़ कर फिर देख भी लेती धूप में सोए बच्चे को

दिनेश प्रभात कहते हैं -

एक तो घनश्याम हो जो सुन सके
चीख नारी की भरे दरबार में

नंद लाल पाठक महिलाओं की बेबसी को कुछ यूं व्यक्त करते हैं -

नदी जो कल दिख रही थी गुमसुम,
वो वक्त पाकर उफ़ान पर है
जो धूल पैरों तले पड़ी थी,
वो आंधियों की उड़ान पर है

वशिष्ठ अनूप के शेर बेटियों की जद्दोजहद को कुछ यूँ व्यक्त करते हैं -

नहीं महफ़ूज़ हैं अब बेटियां अपने घरों में भी
जनकपुर में कोई सीताहरण की बात करता है

सुशील साहिल मेहनतकश महिलाओं के जज्बे को कुछ यूंव्यक्त करते हैं -

ममता, मेहनत औ' गुरबत की ऐसी और मिसाल कहां
बच्चा बांध के पीठ पे अपनी पत्थर तोड़ रही है मां

दिनेश प्रभात महिलाओं की अस्मिता को लेकर काफी चिंतित हैं । उनकी भावनायें उनके शेर में कुछ इसतरह व्यक्त हुई हैं -

निर्वसन करके घुमाया एक वृद्धा को
चल रहा कैसा ये नंगा नाच बस्ती में

उसी तरह दलित और आदिवासी भी समाज का शोषित एवं वंचित तबक़ा है, जिनका अस्मिता मूलक संघर्ष जारी है। इधर 21वीं सदी में अस्मिता मूलक विमर्श ने कई और आयामों को समेटा है, जिसमें मानवीय और मानवेतर विमर्श प्रमुख रूप से हैं। मानवीय विमर्श में स्त्री विमर्श, दलित विमर्श, किन्नर विमर्श, आदिवासी विमर्श, वृद्ध विमर्श, बाल विमर्श, किसान व मज़दूर विमर्श, युवा विमर्श तथा अल्पसंख्यक विमर्श इत्यादि हैं। इसी तरह मानवेतर विमर्श में पर्यावरण, पशु-पक्षी, सांस्कृतिक तथा आबादी विमर्श भी आजकल अस्मिता मूलक विमर्श का हिस्सा हैं। जब दलित लेखक अपनी आत्मकथा लिखता है, तो वह संपूर्ण दलित समुदाय में व्याप्त सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक और राजनैतिक सरोकारों को उजागर करता है। और यही उजागर करना ही दलित विमर्श की पहली सीढ़ी है। दलित साहित्य के माध्यम से दलितों के मुख्य स्वर पीड़ा,निषेध, निराशा ,अपमान आदि का विरोध किया गया क्योंकि यह अपमान के कारण ही उपजा है। हिंदी साहित्य में दलित साहित्य का उद्भव इसी संघर्ष की परिणति है, जिसके माध्यम से दलित अपने अधिकारों के प्रति सजग हुए तथा एक नए समाज के निर्माण की अवधारणा रखी।

दलित विमर्श में सिर पर मैला ढोने की अमानवीय प्रथाः आज कम ज़रूर हुई है, पर समाप्त नहीं। ***बल्ली सिंह चीमा*** के शेर देखें -

हक़ से वंचित है इंसान अपनी जगह
ख़ूबसूरत है संविधान अपनी जगह

ज्ञान प्रकाश विवेक दलितों की परेशानी को कुछ इस तरह व्यक्त करते हैं -

जाने नहीं देता वो मुझे गांव से बाहर
लेकिन कहीं तंबू भी लगाने नहीं देता

दलित विमर्श की हक़ीक़त को एक शेर में ढालकर ***राम मेश्राम*** ने उनके जीवन को प्रतिबिंबित किया है-

झूठा बता के बाप को, बीवी को फ़ाहिशा
हमने दलित-विमर्श को अभिनव उछाल दी

आदिवासी विमर्श भी आज समय की ज़रूरत है। आदिवासी स्त्री का निरंतर हो रहा शोषण रोज़मर्रा के जीवन से जुड़ी समस्याएं हैं, भविष्य के प्रति आशंकाएं हैं तथा साथ ही अपने शोषण के विरुद्ध उठ खड़े होने का आह्वान है।

मधुवेश आदिवासियों की पीड़ा अपने शब्दों में इस तरह व्यक्त करते हैं -

तुम्हें वो याद है क्या शख़्स जिसकी जान थे जंगल
कि जिसने चिपको आंदोलन चलाया था बहुत पहले

अमर पंकज ने आदिवासियों की व्यथा को कुछ ऐसे व्यक्त किया है -

बचा खेत खलिहान जंगल बचा तू
सदी का लुटेरा भी तो दांव में है

आदिवासी विमर्श की ही भांति विकलांगता विमर्श भी आज समय की ज़रूरत है। पर, यह न केवल गजल बल्कि हिन्दी साहित्य से उपेक्षित है। ग़ज़लकारों ने विकलांता विमर्श पर क्या कुछ कहा है इसे देखें-

दरवेश भारती ने विकलांगता के मर्म को कुछ इस तरह देखा है-

जिनके नसीब में हो लिखा अंधकार ही
मन के दिये जला के भी वो लोग क्या करें

हमारा देश अपने बुजुर्गों का सम्मान करना जानता है। लेकिन ख़्वाहिशों की लत और भूमंडलीकरण की दौर ने मनुष्य को हैवान बना दिया है। वह अपना संस्कार भूलता जा रहा है। वसुधैव कुटुंबकम मानने वाला यह देश अपने बुजुर्गों के लिए वृद्धाश्रम खोल रहा है, सुन जानकर रूह कांप जाती है।

दरवेश भारती ने बुजुर्गों की पीड़ा को कुछ यूं व्यक्त किया है -

हासिल न हो सका बड़े बुढ़ों को सुख कभी
चाहे सपूत उनके कमाते रहे बहुत
फिर रहा बेटा शहर में सूट-टाई में
गाँव में अब भी पिता की देह नंगी है

मनोज अहसास ने बुजुर्गों की मनोदशा समझी है। इनका शेर देखें -

टूटा मन है, रोगी तन है, रिश्तों में बेगानापन
यारो कुछ तरकीब निकालो, जिससे मुझे आराम लगे

ऋषिपाल धीमाल ने बुजुर्गों की परेशानी को अपने शेर में ऐसे रखा है -

वो घड़ी आज भी रह-रह के दुखाती है दिल
जिस घड़ी हमने बुजुर्गों का ठिकाना छोड़ा

ओम प्रकाश यती ने बुजुर्गों के अकेलेपन को अपने शेर में व्यक्त किया है -

नाती पोते वाले होकर अब भी घर में तनहा हैं
वो परिवार कहाँ है जिस पर मरते आए बाबूजी

वशिष्ठ अनूप इसे जीवन का क्रम मानते हैं. ये कहते हैं -

बुढ़ापा सब पे आता है,बुढ़ापा सब पे आयेगा
भले होते हैं गर बच्चे तो लाचारी नहीं आती

अनिरुद्ध सिन्हा कहते हैं -

बुढ़ापे में हमें यूं क़ैद कर रखा है बच्चों ने
हमारे घर के आँगन से हमारी चारपाई तक

विकास ने बुजुर्गों की महता को इस शेर में रखा है -

घर की दहलीज़ पे रहते हैं पिता जी मेरे
इनकी ख़ुशबू से महकता है ये आंगन अपना

युवा गजलकार अविनाश भारती लिखते हैं -

नज़र जिनको मिली हमसे वही आंखें दिखाते हैं,
क़दम कैसे कहां रक्खें हमें बच्चे बताते है

माधव कौशिक खेतिहर किसान की पीड़ा को ऐसे व्यक्त करते हैं -

कभी-कभार तो बालक समान रोता है
अकेला खेत में बूढ़ा किसान रोता है

पंकज कर्ण ने बुजुर्गों को पथ प्रदर्शक बताया है। उनका कहना है कि बुजुर्गों की नसीहत से हम अपने जीवन में आगे बढ़ सकते हैं। शेर देखें -

बुजुर्गों की नसीहत ठीक वैसी है ऐ जग वालों
अंधेरी कोठरी में जैसे रोशनदान कर देना

अनिरुद्ध सिन्हा का यह शेर बुजुर्गों की पीड़ा का सटीक उदाहरण है। शेर देखें -

पूछिए उस अभागन से उसका पता
ज़िंदगी को जिसे झुर्रियां खा गई

समाज के हाशिए पर खड़ा किन्नर समुदाय आज भी किन्नर विमर्श के लिए शब्द साधकों की राह देख रहा है। ***डॉ. भावना*** ने उनकी इसी मंशा को अपने दो शेरों के माध्यम से कुछ इस तरह रखा है -

मुनासिब हक़ मिले, सम्मान भी हो
यही किन्नर तो जग से चाहता है

स्त्री विमर्श आजकल लेखन के केंद्र में है। स्त्री विमर्श पर लेखन से महिला सशक्तिकरण की धार तेज़ हो रही है। दिव्यांगता लेखन के केंद्र में पहले नहीं था, लेकिन अब कुछ लेखक हाशिए पर जीने वाले दिव्यांगों की पीड़ा को भी ग़ज़लों में ढाल रहे हैं। वैसे ही आदिवासी समाज भी हाशिए पर है। उनका जल, जंगल और ज़मीन उदारीकरण के दौर में छीनता चला गया। आज उनके पास कुछ नहीं है। उनकी पीड़ा समझने के लिए किसी के पास समय भी नहीं है। वैसे ही किन्नर समुदाय भी समाज के हाशिए पर है। किन्नरों पर बातें तो बहुत होती हैं, लेकिन लेखन में भी यह समाज अनछुआ रहा है। बहुत कम लेखकों ने किन्नरों के जीवन को लेखन में जगह देने की पहल की है।

अंत में, हस्तीमल हस्ती के इस शेर से अपनी बात समाप्त करना चाहती हूं-

सबको अपने लिए रोशनी चाहिए,
कोई जलता नहीं दूसरों के लिए।

आद्या हॉस्पिटल
सीतामढ़ी रोड, जीरोमाईल, मुजफ्फरपुर 842004

आज की हिन्दी ग़ज़ल के युवा हस्ताक्षर

अविनाश भारती
युवा साहित्यकार

हिन्दी ग़ज़ल की दुनिया में नित नए ग़ज़लकारों का उदय हो रहा है। यह वर्तमान के साथ-साथ भविष्य के लिए भी काफ़ी सुखद है। अब हिन्दी साहित्य की दुनिया में ग़ज़ल क़तई असाहित्यिक और अकाव्योचित नहीं रही। मतलब साफ़ है कि आधुनिक युग की ग़ज़लें साहित्य की अन्य विधाओं की तरह अपनी ज़िम्मेदारियों का ख़ूब निर्वहन कर रही हैं।

कई दशक पहले दुष्यंत ने जिस ग़ज़ल परिपाटी की नींव रखी थी, उसका निर्वहन आज ग़ज़ल-लेखन की पहली शर्त बन चुकी है। हिन्दी ग़ज़ल को साहित्य की सबसे लोकप्रिय विधा के रूप में स्थापित करने में समकालीन हिन्दी ग़ज़लकारों की भी महती भूमिका रही है, जिसे कभी भी, किसी भी शर्त पर नकारा नहीं जा सकेगा।

निःसंदेह ग़ज़लों में कथ्य के स्तर पर क्रांतिकारी परिवर्तन आ चुका है। अब निरंतर हिन्दी ग़ज़लों में प्रतिरोध का स्वर बढ़ने लगा है। ग़ज़लों में जनसरोकार की बातें होने लगी हैं। वरिष्ठ पीढ़ी के बाद युवा पीढ़ी भी काफ़ी हद तक ग़ज़ल-यात्रा के कई पड़ाव पार कर चुकी है। इनके ठीक पीछे नवोदित ग़ज़ल-पीढ़ी भी समकालीन हिन्दी ग़ज़ल की मशाल उठाए खड़ी है। ऐसे में युवा गजलकारों के दृष्टिकोण को जानना और समझना और भी ज़्यादा महत्वपूर्ण हो जाता है। इस इंटरनेट और मोबाइल की लोलुपता के दौर में ग़ज़ल-लेखन के प्रति युवाओं का आकर्षण और बढ़ती भागीदारी हिन्दी ग़ज़ल के एक नए दौर का संकेत है।

अमूमन देखा जाता है कि ज़्यादातर समकालीन हिन्दी ग़ज़ल-आलोचक युवाओं की ग़ज़लों में जबरन दुष्यंत कुमार और अदम गोंडवी के कथ्य और शिल्प को तलाशने में लग जाते हैं। कुछ हद तक उन्हें सफलता भी मिल जाती है। लेकिन यह भी सच है कि इन्हीं कारणों से अभ्यासी युवाओं का लेखन से मोहभंग भी शुरू हो जाता है। मेरा मानना है कि युवाओं की लेखनी को ठीक वैसे ही तराशना चाहिए, जैसे कोई कुम्हार चाक की मिट्टी को आकार देता है।

बहरहाल, मौजूदा समय में हिन्दी ग़ज़ल-लेखन में सक्रिय और प्रतिबद्ध युवा ग़ज़लकारों की बात करे तो कई प्रभावशाली नाम हमारे मानस पटल पर छाने लगते हैं, उन्हीं नामों में अभिषेक कुमार सिंह, के. पी. अनमोल, गरिमा सक्सेना एवं नज़्म सुभाष आदि प्रमुख हैं।

बहुत कम उम्र में ही सत्यम भारती और कुन्दन आनंद ने अदब की दुनिया में अपनी अमिट पहचान बनाई है। दोनों युवा ग़ज़लकार हमारे अंदर प्रेम-सद्भाव को जागृत करने की बात करते हैं। ताकि हमारा संपूर्ण जीवन मानवहित में व्यतीत हो सके। जनसरोकार से लैस इनकी ग़ज़लों में वर्तमान की हक़ीक़त को हू-ब-हू बयां करने का अदम्य सामर्थ्य है। मानवीय गुणों को पुर्नस्थापित करने की दिशा में ऐसे युवा रचनाकारों को पढ़ना बेहद अनिवार्य हो जाता है। क्योंकि युवाओं की विचारधारा आने वाले समय की सार्थकता और निरर्थकता को तय करती हैं। इसलिए भी युवा रचनाकारों के ऊपर वर्तमान और भविष्य की बेहतरी का पूरा-पूरा दारोमदार है।

डॉ. रामनाथ शोधार्थी अपने समय को लिखने वाले फनकार हैं। विगत कुछ वर्ष पहले जब पूरी दुनिया कोरोना महामारी के चपेट में थी। तब एक ओर जहां असंख्य लोगों की मौत हुई, वहीं दूसरी ओर मानव-सभ्यता, विज्ञान तथा हमारी चिकित्सा पद्धति की उन्नति और विकास पर प्रश्नचिन्ह भी खड़े हुए। अपने आप को ख़ुदा समझने वाले आत्ममुग्ध लोगों को आईना दिखाता हुआ डॉ. रामनाथ शोधार्थी के अश'आर ध्यातव्य हैं-

कहां पर हैं फलक वाले फ़रिश्ते,
ज़मीं वाले फरिश्ते मर रहे हैं।

सभी को एक दिन मरना है लेकिन,
सभी मरने से पहले मर रहे हैं।

ग़ज़लकार नीरज कुमार 'निराला' की ग़ज़लें आम जनता की पीड़ा की मुखर अभिव्यक्ति जान पड़ती हैं। इनकी ग़ज़लों में संवेदना के साथ-साथ जनाक्रोश भी है। और सच बयानी की उत्कंठा भी है।

विनोद निर्भय मानवता के पक्षधर हैं। इनके साहित्य में मानवता और मानववाद को मजबूती देने वाले तत्वों की प्रचुरता है। कहीं-न-कहीं इन्हें पता है कि मानवता को बनाए रखने में साहित्य की क्या भूमिका हो सकती है! अमूमन हम यही चाहते हैं कि सभी हमारे साथ मानवीयता के साथ पेश आएं। लेकिन कभी यह नहीं सोचते कि हमें भी दूसरों के साथ आत्मीयता के साथ पेश आना चाहिए। अर्थात हम दूसरों से शुरूआत की उम्मीद तो करते हैं। लेकिन कभी ख़ुद से अच्छाई की शुरूआत नहीं करते।

मानवतावाद के विस्तार एवं विकास के लिए आपसी द्वेष को भुलाकर ख़ुद को ज़माने की सेवा के लिए तैयार रखना होगा। साथ ही जाति-धर्म से ऊपर मानव और मानवता को रखना होगा, तभी मानवीय गुण और विश्व-बंधुत्व के भाव स्थापित हो सकेंगे। इस सन्दर्भ में विनोद निर्भय के अश'आर अवलोकनार्थ हैं-

दिलों को जोड़कर नफ़रत मिटाने की ज़रुरत है,
नया हो या पुराना ग़म, भुलाने की ज़रुरत है।

संजीदा ग़ज़लकार दिवाकर पाण्डेय 'चित्रगुप्त' की ग़ज़लें विविध कथ्यों का कोलाज हैं। इस बाबत ग़ज़लकार का सिर्फ़ एक शे'र उनके उत्कृष्ट ग़ज़ल-लेखन, चिंतन और दृष्टिकोण को परिभाषित करता हुआ जान पड़ता है। शे'र है-

इस पहलू में अपनी मां है, उस पहलू बच्चों की मां,
दोनों में जो मेल करा ले, सबसे क़ाबिल वो ही है।

आज ग़जलकार अपने चारों ओर के परिवेश में जो भी देख रहा है, उसी को अपने शे'र का विषय बना रहा है। आज की ग़ज़लों के केंद्र में यदि ऊंची हवेलियां हैं, तो टूटी-फूटी झोपड़ियों को भी वह अनदेखा नहीं कर रही है।

मौजूदा दौर में हँसमुख आर्यावर्ती और सत्यशील राम त्रिपाठी सबसे संभावनशील युवा ग़ज़लकार हैं। इनकी ग़ज़लें इनकी आयु के ठीक विपरीत समस्याओं और विद्रुपताओं से मुठभेड़ करती हुई नज़र आती हैं। बहुत हद तक इनकी ग़ज़लें पाठकों को अपनी प्रौढ़ता का भान कराती हैं। यथार्थ-लेखन के साथ-साथ मानवीय जिजीविषा को भी सुदृढ़ करने वाले विषय इनकी ग़ज़लों के वास्तविक सौंदर्य हैं।

उदाहरण स्वरूप चंद अश'आर प्रस्तुत हैं-

एक गवाही झूठी देकर पाला है अपराध,
जीवन भर का पछतावा है आंखों देखा दृश्य।
-हँसमुख आर्यावर्ती

हौसले की साइकिल चलने लगी,
और पीछा कार का करने लगी।
-सत्यशील राम त्रिपाठी

मिटाने की कोशिश करो चाहे जितनी,
हरा ही रहेगा मेरी ज़िद का कोंपल।
-अविनाश भारती

सत्येंद्र गोविन्द और विकास सोलंकी मंचों की आबोताब और क्षणिक आकर्षण से दूर हिन्दी ग़ज़ल की बेहतरी को लेकर पूर्णतः समर्पित और प्रतिबद्ध नज़र आते हैं। इनकी सक्रियता इनकी ग़ज़लों में दृष्टिगत है। ख़ास करके विकास सोलंकी की ग़ज़लों में ऐतिहासिक पात्रों और प्रसंगों का नए संदर्भों में प्रयुक्त होना तथा मिथकों और कहावतों का यथोचित प्रयोग ग़ज़ल-अनुरागियों के लिए किसी उपहार से कम नहीं है। वहीं सत्येंद्र गोविन्द गांव से ताल्लुक़ रखने वाले रचनाकार हैं, फलस्वरूप गांव की सुंदरता और रमणीयता के साथ-साथ गांव की विद्रुपता भी इनकी ग़ज़लों में मुख्य विषय के रूप में दिखाई पड़ते हैं। उदारहणार्थ कुछ शे'र देखे जा सकते हैं-

सिक्के फेंको न्याय ख़रीदो मन माफ़िक़,
पंचों का ऐसा दरबार बताओ तो।
-सत्येंद्र गोविन्द

प्रश्न मेरे सामने तो आज भी इक यक्ष है,
सोचता हूं क्यों युधिष्ठिर द्रोण का प्रतिपक्ष है?

भोग रोटी-साग का जिसने लगाया भाव से,
प्रेम की अवधारणा में कौन अब समकक्ष है?
-विकास सोलंकी

समय का चक्रव्यूह भी अजीब है। अमन चाँदपुरी और शुभम श्रीवास्तव 'ओम' जैसे भविष्णु रचनाकार भी इस चपेट से नहीं बच सके। ईश्वर ने उन्हें कम आयु में ही हमसे छीन लिया। लेकिन अपने जीवन-काल में दोनों रचनाकारों ने हिन्दी ग़ज़ल को नई ऊंचाई देने की पुरजोर और अथक कोशिश की। हिन्दी ग़ज़ल के विकास और विस्तार में उनके योगदान और समर्पण को हमेशा याद रखा जाएगा।

विदित हो कि यह फेहरिस्त यही ख़त्म नहीं होती और भी कई महत्वपूर्ण नाम हैं जो कम उम्र में भी समकालीन हिन्दी ग़ज़ल की दुनिया में अपनी विशेष पहचान के लिए सृजनरत और प्रतिबद्ध हैं। उन नामों में अजय नमन, अमित वागर्थ, उत्कर्ष अग्निहोत्री, कुणाल दानिश, चित्रांश खरे, चित्रा भारद्वाज 'सुमन', जयनित कुमार मेहता, पंकजोम 'प्रेम', पीयूष शर्मा, प्रवीण कुमार दर्जी, रघुनन्दन शर्मा 'दानिश', राम शिरोमणि पाठक, राहुल कुम्भकार, अनिल मानव, सारथी बैद्यनाथ, विशाल ओझा 'एहसास', शिवम कुमार 'आशाद', सर्वेश त्रिपाठी, चाँदनी समर, मनीष मोहक, डॉ. स्वराक्षी स्वरा, डॉ. रूपम झा, डॉ. मनजीत सिंह किनवार, विजय कुमार आदि प्रमुख हैं।

इस तरह से कहा जा सकता है कि आज युवा पीढ़ी पूरे दमखम के साथ ग़ज़ल के शिल्प को साधते हुए अपनी ग़जलों का लोहा मनवा रही है। उपरोक्त नामों के अलावे और भी युवा स्वर हैं, जो निरंतर बेहतर लिख रहे हैं, लेकिन यहां सबको एकसाथ समेटना संभव नहीं है। इन रचनाकारों की ग़ज़लें पाठकों और आलोचकों को भी उम्मीद दिलाती हैं कि हिन्दी ग़ज़ल साहित्य का संसार संभावनाओं से भरा हुआ है। ●

मुजफ़्फ़रपुर, बिहार

▸▸महाकवि आचार्य कुमुद विद्यालंकार
प्रसिद्ध साहित्यकार, स्वतंत्रता सेनानी

साकेत, कामायनी और तथागत ये तीन महाकाव्य ही हिन्दी में: महाकवि आचार्य कुमुद विद्यालंकार

महाकवि आचार्य कुमुद विद्यालंकार साहित्य, समाजसेवा और पत्रकारिता के भीष्म पितामह माने जाते हैं। इन्होंने किशोरावस्था में अंग्रेजों के दमन के ख़िलाफ़ आवाज़ बुलंद की। चिंगारी पत्रिका निकालकर अंग्रजों के ख़िलाफ़ देश भर में माहौल बनाने का काम किया। नतीजतन अंग्रेज़ों की आंखों की किरकिरी भी बने। इन्हें जेल की यातना सहनी पड़ी। हाईकोर्ट के एक आदेश के बाद किशोरों को जेल से मुक्त किया गया। वे जेल से रिहा हुए। बाद में इन्होंने सक्रिय रूप से अंग्रजों को भारत से खदेड़ने के लिए पत्रकारिता का दामन मज़बूती से पकड़ लिया। यह बिहार से सीधे कोलकाता चले गएं। वहां से निकलने वाले दैनिक अख़बार के संपादन में अपना सहयोग दिया और अपने मिशन में जुड़ गए। 1911 में जन्मे कुमुद जी का 13 अप्रैल, 2002 में निधन हो गया। उन्होंने साहित्य में अविस्मरणीय योगदान दिया। उनके नाम पर महाकवि आचार्य कुमुद विद्यालंकार राष्ट्रीय विचार मंच की स्थापना की गई है। 2003 से प्रत्येक वर्ष उनके नाम पर कुमुद पुरस्कार प्रदान किया जाता है। यह पुरस्कार राष्ट्रीय एवं जनपदीय पत्रकारिता, समाजसेवा एवं साहित्य के लिए दिया जाता है।

'नहीं जानता विभो ! विश्व में
आशा है कि निराशा है,
तुम्हें जानकर जान सकूंगा
मन में क्या अभिलाषा है?

मन में अमित मनोरथ है
चिर साथी हैं नवजात नहीं
मन का है रथ दौड़ रहा
पर कहां जाएगा ज्ञात नहीं

चाहा किन्तु नहीं कुछ पाया
छाया - भाया के भ्रम में
रथियों - रथ विक्षिण हुए
मैं व्यस्त हुआ केवल श्रम में''

यह कविता है 90 वर्षीय कुमुद विद्यालंकार की, जिन्होंने आज़ादी के लिए अलख जगाने के जुर्म में 13 वर्ष की उम्र में जेल की सज़ा काटी। यह वही शख़्स हैं जिनके महाकाव्य 'तथागत' पर अपने उद्घाटन संबोधन में राष्ट्रकवि मैथिली शरण गुप्त को कहना पड़ा था कि साकेत, कामायनी और तथागत ये तीन महाकाव्य ही हिंदी में हैं। राष्ट्रकवि के उस उद्बोधन से हिन्दी के जानकार बख़ूबी महाकवि आचार्य कुमुद विद्यालंकार के साहित्य-सृजन के मानदंड का पता लगा सकते हैं।
श्री अटल बिहारी वाजपेयी को छात्र जीवन के दौरान जब गिरफ़्तार किया गया था, तो कुमदु विद्यालंकार ने ही उनकी ज़मानत कराई थी। लेकिन उन्होंने कुमुद विद्यालंकार की कभी सुध नहीं ली। यहां तक कि प्रधानमंत्री की कुर्सी पर बैठने के बाद भी उन्हें कभी कुमुद विद्यालंकार की याद नहीं आई। यही रवैया दूसरों के साथ-साथ बिहार सरकार का भी रहा। नतीजतन उन्होंने अपना अंतिम समय अभाव के बीच पूर्ण संतोष के साथ जिया। कभी उन्हें किसी चीज़ का मलाल नहीं रहा। दानी समभाव और समाज-सेवा के जुनून का आलम यह

था कि उन्होंने अपनी बेशक़ीमती 11 एकड़ ज़मीन मधेपुरा जवाहर ज्योति महाविद्यालय को शिक्षा के लिए दान कर दी। समाजसेवा और शिक्षासेवा तो उनके सेवाभाव का एक अहम हिस्सा था। हमदर्दी, मानवता और सच्चाई के वह जीती जागती प्रतिमूर्ति थे। उनके ग्रामीण इलाक़ों के प्राइमरी, मिडिल एवं हाईस्कूल उन्हीं की प्रेरणा और पहल की देन हैं।
उनके जीवन के अंतिम पड़ाव पर उनके आवास पर ए आर आज़ाद द्वारा लिया गया एक ख़ास और दुलर्भ इंटरव्यू :

यह कविता है 90 वर्षीय कुमुद विद्यालंकार की, जिन्होंने आज़ादी के लिए अलख जगाने के जुर्म में 13 वर्ष की उम्र में जेल की सज़ा काटी। यह वही शख़्स हैं जिनके महाकाव्य 'तथागत' पर अपने उदघाटन संबोधन में राष्ट्रकवि मैथिली शरण गुप्त को कहना पड़ा था कि साकेत, कामायनी और तथागत ये तीन महाकाव्य ही हिंदी में हैं। राष्ट्रकवि के उस उद्‌बोधन से हिन्दी के जानकार बख़ूबी महाकवि आचार्य कुमुद विद्यालंकार के साहित्य-सृजन के मानदंड का पता लगा सकते हैं।

श्री अटल बिहारी वाजपेयी को छात्र जीवन के दौरान जब गिरफ़्तार किया गया था, तो कुमदु विद्यालंकार ने ही उनकी ज़मानत कराई थी। लेकिन उन्होंने कुमुद विद्यालंकार की कभी सुध नहीं ली। यहां तक कि प्रधानमंत्री की कुर्सी पर बैठने के बाद भी उन्हें कभी कुमुद विद्यालंकार की याद नहीं आई। यही रवैया दूसरों के साथ-साथ बिहार सरकार का भी रहा। नतीजतन उन्होंने अपना अंतिम समय अभाव के बीच पूर्ण संतोष के साथ जिया। कभी उन्हें किसी चीज़ का मलाल नहीं रहा। दानी समभाव और समाज-सेवा के जुनून का आलम यह था कि उन्होंने अपनी बेशक़ीमती 11 एकड़ ज़मीन मधेपुरा जवाहर ज्योति महाविद्यालय को शिक्षा के लिए दान कर दी। समाजसेवा और शिक्षासेवा तो उनके सेवाभाव का एक अहम हिस्सा था। हमदर्दी, मानवता और सच्चाई के वह जीती जागती प्रतिमूर्ति थे। उनके ग्रामीण इलाक़ों के प्राइमरी, मिडिल एवं हाईस्कूल उन्हीं की प्रेरणा और पहल की देन हैं।

उनके जीवन के अंतिम पड़ाव पर उनके आवास पर ए आर आज़ाद द्वारा लिया गया एक ख़ास और दुलर्भ इंटरव्यू :

आपको उम्र के इस पड़ाव पर आकर कैसा लग रहा है?

ठीक आप लोगों के उल्टा। जितने भी साथी-संगी थे कहीं भी आज खोजने से नहीं मिलते।

चारों ओर सूनापन। सहयोगियों की कमी खल रही है।

उन यादों में कुछ नाम?

दिल्ली स्थित जामिया मिलिया इस्लामिया में हमारे मिलने वाले मनुदेव शास्त्री थे। जामिया मिलिया को मैं उन्हीं से जानता था। जितने भी साथी थे, सब के सब दिल्ली में थे लेकिन वे सब भी नहीं रहे।

आपने भी दिल्ली की ख़ूब सेवा की। कितने वर्षों तक दिल्ली में रहे?

12 वर्ष तक दिल्ली में रहा।

कहा जाता है कि आप तत्कालीन कैबिनेट मंत्री सत्यनारायण सिंह के बहुत क़रीबी रहे?

यह सही है कि मैं बाबू सत्यनारायण सिंह का करीबी रहा।

दिल्ली में रिगल बुक डिपो के लिए भी आपने ख़ूब लिखा?

रिगल बुक डिपो के रामचंद्र गुप्त के कैटलॉग में सैकड़े में से 75 किताबें मेरी ही थीं।

उम्र की इस दहलीज़ पर जब आप पहुंच चुके हैं तो क्या उन्होंने कभी आपकी सुध लेने की कोशिश की?

बस इतना समझ लीजिए कि आज अब खोजे कोई अपने सहयोगी नहीं रहे।

दिल्ली से कौन सी पत्रिका आपने निकाली?

'गांधीवाद' साप्ताहिक दिल्ली से निकाला।

इस पत्रिका को निकालने में आपके साथ और कौन महत्वपूर्ण व्यक्ति थे?

श्री रामजी के साथ मिलकर 'गांधीवाद' साप्ताहिक निकाला।

पत्रकारिता, साहित्य-सृजन में आपकी रुचि कब और कैसे जगी?

उस समय के कांग्रेस जन ने इरादा किया कि एक बुलेटिन निकाला जाए। 'चिंगारी' बुलेटिन ने ही हमें संपादक बना दिया। यह 1930-31 की बात थी। उसके बाद कलकत्ता चला गया।

कोलकाता में आपने क्या किया?

वहां से 'क्षत्रिय संसार' निकाला।

वहां किस अख़बार में थे। किस नये अख़बार को आपने निकाला?

वहां एक थे राम लखन भाई । उन्होंने रोक लिया कि इसी अख़बार को चलाया जाए।

राम लखन भाई के साथ-साथ उस समय के और किन-किन साहित्यकारों और पत्रकारों से आपकी गहरी मित्रता हुई?

उसके बाद तो समझिए कि मोहन सिंह चंद्र सेंगर कलकत्ता में मिले। उनके साथ भी वर्ष दो वर्ष रहा और उनके अख़बार को देखा।

उन्होंने कौन सा अख़बार निकाला था?

उन्होंने 'नया समाज' निकाला था।

कोलकाता के बाद आपने कहां का रास्ता तय किया?

कलकत्ता से आगरा की ओर बढ़ा।

कुछ साल याद है कब आपने आगरा के लिए रूख़ किया?

यह बात 1933-34 की है।

आगरा से आपने क्या-क्या निकाला?

वहां से 'नव संदेश' निकाला।

उसके बाद कौन से पत्र-पत्रिकाओं की बारी आई?

उसके बाद बाबू गुलाब राय के साथ 'साहित्य-संदेश' निकाला।

कविता और साहित्य का सफ़र तो आपने बहुत लंबा तय कर लिया और अब तो आप साहित्य के दादाजी कहे जाते हैं। कृपया यह बताएं कि आपने कविता की शुरूआत कैसे की?

बनारस के उदय प्रताप कॉलेज के प्राध्यापक प्रो. राम पलट सिंह 'मधुर' जी के संपर्क में आया। वहीं से हमारी कविता शुरू हुई। जो भी कुछ लिखता था उस पर उनकी नजर पड़ती थी। जिसका नतीजा हुआ कि उस समय बिहारी भाषा को लोग कहते थे कि मेरी हिन्दी यूपी के जोड़ में हो गई।

लेकिन उस समय तो यूपी और बिहार में भाषा को लेकर काफ़ी टकराव की बात आती रहती थी?

जी हां, उस समय बिहारी भाषा और यूपी भाषा में काफ़ी विवाद बनता रहा। यह 1934 की बात है।

आपने बच्चों की भी पत्रिकाएं निकालीं?

'नौनिहाल' नामक बच्चों का पत्र निकाला। यह 7 प्रांतों में शिक्षा विभाग से स्वीकृत था।

'नौनिहाल' कहां से निकालना शुरू किया?

आगरा से।

आपका पहला और आख़िरी महाकाव्य?

पहला और आख़िरी महाकाव्य संग्रह 'तथागत' रहा।

तथागत का विमोचन उस समय हुआ था? किन्होंने उसका विमोचन किया था?

'तथागत' का विमोचन राष्ट्रकवि मैथिली शरण गुप्त ने किया था।

तथागत महाकाव्य पर उनकी क्या प्रतिक्रिया रही? साफ़ अलफ़ाज़ में कहूं तो उन्होंने इसको लेकर क्या कहा?

राष्ट्रकवि मैथिली शरण गुप्त ने अपने उद्घाटन भाषण में कहा था, 'साकेत, कामायनी और तथागत ये तीन महाकाव्य ही हिन्दी में हैं।' गुप्त जी का साकेत, जय शंकर प्रसाद की कामायनी और कुमुद विद्यालंकार यानी मेरी तथागत को लेकर उन्होंने हिन्दी का तीन ही महाकाव्य बताया।

उच्च शिक्षा पाठ्यक्रम में कौन-कौन सी आपकी पुस्तक लगाई गई?

विद्यापति - पदावली और तथागत।**आपके कुल कितने मौलिक संग्रह हैं?**

लगभग 14 मौलिक संग्रह हैं।

सब किस तरह की पुस्तकें हैं?

महाकाव्य, प्रबंध काव्य, कविता संग्रह, ललित निबंध, समीक्षा आदि विधाओं में लिखी गई हैं।

आज के साहित्यकार और आपके युग के साहित्यकारों में कोई अंतर?

(कुछ देर की घोर खामोशी के बाद) मेरे ख़्याल से आज साहित्य में जो कुछ गंभीरता चाहिए वह कहीं कुछ नहीं है। आज के साहित्य पर यही कहना चाहूंगाः-

'सब साहित्य भ्रष्ट कर डाला
इन कलयुगिया छौड़ों ने,
फैला दी गंदगी विश्व में
बेलगाम कुल बोरो ने।।'

आज के साहित्य को मैं यही मानता हूं।

हमारे प्रधानमंत्री अटल बिहारी वाजपेयी के पिताश्री आपके दोस्त थे कुछ स्मृतियां?

वाजपेयी आगरा कॉलेज के विद्यार्थी थे। 1942 में पकड़े गए थे। उनके पिता जी और मैं उनकी ज़मानत के लिए अदालत का बार-बार चक्कर लगा रहे थे। उस समय हम दोनों की बेचैनी इतनी बढ़ गई थी कि चाहता था कि जितनी से जितनी जल्दी हो सके उनकी ज़मानत हो जाए।

साहित्य के प्रति सरकार के दृष्टिकोण को आप किस तरह से देखते हैं?

आज सरकार किसी भी साहित्य के लिए कोई तत्परता नहीं दिखाती है। बल्कि जहां तक मुझे ज्ञात है पिछले 15 वर्षों से किसी भी लाइब्रेरी के लिए किताब भी नहीं ख़रीदी गई है। बिहार में साहित्य-उत्थान के लिए राष्ट्र भाषा परिषद खोला गया था, लेकिन इस परिषद का आज कोई पता नहीं है। काम कहां? सिवाय इसके कि कुछ कर्मचारी हो-वह भी हमें कुछ पता नहीं।

आपके साहित्य को बहुत कुछ दिया साहित्य ने आपको क्या दिया?

मैं क्या बताऊं?

आज साहित्य समाज को आईना दिखाने में अक्षम क्यों है?

यह तो साधारण बात है जब साहित्य में कोई गीत-रहस्य लिखने वाले तिलक पैदा नहीं होते हैं-तब क्या स्थिति हो सकती है। साहित्य का काम है पथ-प्रदर्शन। जब साहित्य की दृष्टि ही उस भाव को लेकर न हो तो फिर क्या साहित्य। आज साहित्य कौन पढ़ता है?

इसके लिए आप समाज या साहित्य-सृजक को दोषी मानते हैं?

समाज और साहित्यकार दोनों का दोष साथ-साथ चलता है।

समाज के प्रति साहित्य और साहित्यकारों की क्या भूमिका होनी चाहिए?

समाज में जो जीवन ला सके वही साहित्य है और वही साहित्यकार है, एक सूत्र में।

आपने कब से कुछ नहीं लिखा है। इसका ख़ास कारण?

पटना छोड़ने के बाद कुछ नहीं लिखा है। जो आदमी अपने चारों ओर सूनेपन का अनुभव करता हो वह क्या करे? आंखों के सामने गुजरने वाली चीजें प्रेरणा देती हैं लेकिन वह शक्ति ही नहीं तो क्या? कोई भी भूखा उपदेश सुनने से रहा। भगवान बुद्ध के यहां एक त्रस्त व्यक्ति पहुंचा तो शिष्यों ने कहा कि इनका उपदेश सुनकर जाना। शिष्यों की इस वाणी को जब बुद्ध ने सुना तो उन्होंने उनसे कहा कि यह इसके लिए उपदेश सुनने का समय नहीं है। पहले इसको खिलाओ। इसका स्वास्थ्य बनाओ। बिहार में आज कहीं प्रगति बच नहीं पाई है। अभावग्रस्त में क्या हो सकता है?

बिहार में निष्पक्ष चुनाव को लेकर आपकी क्या प्रतिक्रिया है?

क्या बिहार में निष्पक्ष चुनाव संभव है? अगर देश स्तर की बात करें तो क्या आज देश में निष्पक्ष चुनाव संभव है?

इसका जवाब तो गांधीजी ही दे सकते हैं।

पटना छोड़ने के बाद कुछ नहीं लिखा है। जो आदमी अपने चारों ओर सूनेपन का अनुभव करता हो वह क्या करे? आंखों के सामने गुजरने वाली चीजें प्रेरणा देती हैं लेकिन वह शक्ति ही नहीं तो क्या? कोई भी भूखा उपदेश सुनने से रहा। भगवान बुद्ध के यहां एक त्रस्त व्यक्ति पहुंचा तो शिष्यों ने कहा कि इनका उपदेश सुनकर जाना। शिष्यों की इस वाणी को जब बुद्ध ने सुना तो उन्होंने उनसे कहा कि यह इसके लिए उपदेश सुनने का समय नहीं है। पहले इसको खिलाओ। इसका स्वास्थ्य बनाओ। बिहार में आज कहीं प्रगति बच नहीं पाई है। अभावग्रस्त में क्या हो सकता है?

यह 'वाद' किसकी देन है? किसने जातिवाद, धर्मवाद, क्षेत्रवाद और सम्प्रदायवाद की शुरूआत की?

जातिवाद, सम्प्रदायवाद हमारे कांग्रेसियों का ही कुकर्म है।

इस संदर्भ में गांधी जी की क्या सोच थी?

गांधी जी ने कहा था कि जो संस्था शासन में आ जाती है वह नेतृत्व देने लायक़ नहीं रहती है। गांधी जी द्वारा लिखा वह वसीयत आज तक मौजूद है।

क्या कांग्रेसियों ने गांधीजी की इस बात को माना?

नहीं। कांग्रेसियों ने गांधीजी की बात को नहीं माना।

आज़ादी मिलने के बाद कांग्रेसी गांधीजी की कितनी बातों पर अमल किया करते थे?

गांधी ने नमक को करमुक्त कराने हेतु अनशन कर दिया था। गांधीजी की बात रखने के लिए लोगों ने नमक पर से टैक्स हटा लिया।

कितने दिनों के बाद स्वीकृति मिली थी?

तीन दिनों के बाद पटेल ने स्वीकृति दी थी। और नेहरू से कहा- कुर्सी तो हमारे हाथ में है लेकिन अभी भी जनता उसी बूढ़े के हाथ में है।

आप तो गांधी जी के साथ चटनी-रोटी खा चुके हैं कृपया बताएं कि यह नमक से हटा टैक्स कब तक क़ायम रहा?

गांधीजी का श्राद्ध भी पूरा नहीं हुआ था कि इन लोगों ने दोबारा नमक पर टैक्स चालू कर दिया। ●

(अत्रमने-सामने)

मेरे साथ भी आदि कवि 'बाल्मीकि' वाली घटना किसी न किसी रूप में जुड़ी हुई है : आचार्य फ़ज़लुर रहमान हाशमी

आचार्य हाशमी
हिन्दी, उर्दू एवं मैथिली के प्रसिद्ध साहित्यकार

फ़ज़लुर रहमान हाशमी एक आकर्षक और विद्युतीय प्रभाव वाला नाम है जो विवादों के घेरे में रहकर भी उत्तरोत्तर आगे की ओर बढ़ता गया और हमेशा 'भाषाई एकता'के लिए कार्य करता रहा। श्री हाशमी का परिवार भाषा और साहित्य का परिवार था। चाहे वह पैतृक (बराह, पटना) हो अथवा मातृक (मुज़फ़रा)। 'कारवां'(नसीम बिहारी) 'नदीम'(सैयद मोहीउद्दीन नदवी) 'फितरत'(सबा रशीदी) सारी की सारी उर्दू पत्रिकाएं परिवार और ख़ानदान से ही संबंधित थीं, जो पटना की सरज़मी से प्रकाशित हो रही थीं। आपके चाचा सैयद मसूद आलम 'वफ़ा बराही' के बिना बिहार का कोई मुशायरा सफल नहीं माना जाता था। पैतृक की विश्व प्रसिद्ध हस्तियां सैयद सुलेमान नदवी, मौलाना मुनाज़िर हसन ग़िलानी मौलाना बदरुद्दुजा 'कामिल'जैसी शख़्सियत किसी न किसी रुप में क़रीबी रिश्तेदार थे। मातृक गांव मुज़फ़रा के अरबी भाषा के विश्व प्रसिद्ध ज्ञाता एवं समर्थ साहित्यकार अरशैख़ुल आलम अलमुहद्दिस हज़रत मौलाना सैयद मोहसिन बिन यहिया तिरहुती रहमतुल्लाह अलैह पूरे विश्व की शान हैं। उन्होंने भारत के साथ मिस्र और विशेष रुप से मदीना शरीफ़ में इस्लामी साहित्य की ज्योति में प्रखरता दी। दुनिया का साहित्य उनके नाम से भरा पड़ा है।

आपने पहली रचना किस भाषा व विधा में लिखी थी। उसका कारण व आधार क्या था?

मेरे साथ भी आदि कवि 'बाल्मीकि' वाली घटना किसी न किसी रूप में जुड़ी हुई है। आदि कवि ने क्रौंच वध से प्रभावित होकर **'मा निषाद प्रतिष्ठात्वम्'** की बात की थी। मेरा हादसा यह है कि 1952 ई. के आसपास मेरे पास-पड़ोस के लोग पाकिस्तान जाने लगे और वह भी सुरक्षा के ख़्याल से क्योंकि वे लोग भारत में हिन्दुओं से ख़तरा महसूस करने लगे थे। मेरे पिताजी डॉ. सलीम उद्दीन फ़ातमी से भी वतन छोड़ने को कहा गया था। लेकिन वो तैयार नहीं हुए। मैंने नाना (मौलाना शाफ़िक़) का एक भाषण सुना था। उन्होंने कहा था-'ख़ुदा दुनिया का मालिक है'। मुझे लगा कि ये लोग पाकिस्तान सुरक्षा की दृष्टि से क्यों जा रहे हैं, जब ख़ुदा दुनिया का मालिक हैं। जो भारत का ख़ुदा है वही पाकिस्तान का। उस दस वर्ष की आयु में मेरे मुंह से शेर कई पंक्तियों में निकले। जिसकी एक पंक्ति मुझे आज भी याद है। वह है-

''मुल्क दो है तो क्या ख़ुदा भी दो है?
यह न सोचा के चले जाते हैं छोड़े घर-दर''।

सच कहता हूं कि उस दिन मैं बहुत रोया था। कई वर्षों बाद फिर आंखों में शबनमी क़तरे तैरते नज़र आए थे। जब यह सूचना मिली थी कि वे तमाम के तमाम लोग पाकिस्तान में मुसलमान के हाथों ही मारे गए।

मैथिली में कब से लिखना प्रारंभ किया। इस भाषा से कैसे प्रभावित हुए?

दो माह की अवस्था में हमेशा-हमेशा के लिए पैतृक को छोड़कर मातृक आ गया। जब मेरी आठ साल की उम्र थी तो मां दुनिया छोड़ गई। तन्हा संतान के कारण मैं उनकी संपत्ति में बारह आने का मालिक बना, जिसमें ज़मींदारी व ज़मीन भी थी। मैंने सोचा कि मां की जायदाद के साथ मां की भाषा भी लेनी चाहिए। और मैं मैथिली में 1960 से लिखने लगा।

कुछ अख़बारों और व्यक्तियों ने आपको साहित्य अकादमी अनुवाद पुरस्कार प्राप्त करने वाला मैथिली में भारत का पहला मुसलमान कहा है?

क्या कहूं भारत में अतिश्योक्ति भी है और कर्मोक्ति भी। श्री कृष्ण ने पहाड़ उठा लिया था। उन्हें तो गिरधर ही कहना चाहिए था। लोगों ने जमकर मुरलीधर ही कहा। मेरे साथ भी यही बात है। यक़ीन मानिए, मैं

भारत का ही नहीं विश्व का इस मामले में पहला मुसलमान हूं।

आपके मैथिली लेखन पर मुसलमानों ने आपकी प्रशंसा अधिक की या मुख़ालफत?

पूरे मिथिला में प्रशंसा हुई है। मिथिला के बाहर भी लोगों के मन में आदर भाव रहा है। कारण, मुसलमान जन्मजात ईमानदार और सेक्यूलर होते हैं। बड़ी प्रशंसा और गर्व की बात है कि हमारे मुफ़्ती आज़म भारत गौरव जनाब हज़रत डॉ. मुफ़्ती मुकर्रम अहमद साहब शाही इमाम फ़तेहपुरी मस्जिद की भी दुआएं मेरे साथ है। हमारे यहां के डॉ. नवाब, डॉ. अब्दुल मोग़नी, मज़हर इमाम आदि मैथिली विरोधी नहीं रहे। हां, बेगूसराय के एक ही परिवार के दो व्यक्तियों ने मेरी कसकर मुख़ालफ़त की। मेरे मैथिली लेखन और आकाशवाणी व दूरदर्शन से राम-कृष्ण के नाम लेने पर कसकर कोसा। ख़त भी लिखवाया और सलमान रूश्दी और तसलीमा नसरीन की पंक्ति में खड़ा करने की कोशिश भी की। ख़ुदा का शुक्र रहा। उनकी बात बेगूसराय में चल नहीं पाई।

हिंदी अपनी छोटी बहनों का ख़याल रखे। वह अपना विकास किसी भाषा के विनाश पर नहीं चाहे। उर्दू वाले, उर्दू को मुसलमानों के साथ न जोड़ें। इससे उर्दू का बड़ा नुक़सान होगा। मास्टर रामचन्द्र, पंडित चकबस्त महादेव 'आसी', मनोहर सहाय, अनवर, जोश मलसियानी, फराक़ गोरखपुरी, जय नारायण राज, प्रेमचन्द्र, कृष्ण खादर, ख़ुश्तर गिरामी, राजेन्द्र वेदी, सहर, डॉ. अमरनाथ झा आदि-आदि से भी उर्दू का रिश्ता है। जिन्हें ग़ैर मुस्लिम ही कहा जाएगा।

मैथिली वाले दूध, दही और मछली की तरह पत्र-पत्रिकाएं भी ख़रीद कर पढ़ें। दैनिक समाचार पत्र के बारे में भी सोचें। 'अष्टम अनुच्छेद' में प्रविष्टि की हर मुमकीन कोशिश करें। पत्रिका युग की पुकार के अनुरुप हो। मैथिली बोलने में हीनता का अनुभव नहीं करें। साहित्य अकादमी द्वारा प्रकाशित मैथिली पुस्तक को घर में रखें।

मातृभाषा की वरीयता इस्लामिक दृष्टि से भी है क्या?

मातृभाषा का ख़याल ख़ुदा ने भी रखा है। आसमानी किताबों पर नज़र चली जाए तो स्पष्ट होगा। आसमानी किताब सोहफे इब्राहीम, ज़बूर, तौरैत, इंज़ील एवं क़ुरआन पाक की भाषाएं अलग-अलग क्यों रहीं? कुल की भाषा अरबी ही क्यों नहीं थी?

दरअसल बात यह थी कि ख़ुदा को जहां नाज़िल करनी थी उसी के अनुरुप भाषाओं का चयन हुआ। ताकि ईश संदेश को ईशदूत समझ्-ाकर सरलता पूर्वक अपने अनुयायियों को समझा सके। मैं मैथिली में क़ुरआन पाक और हदीस शरीफ भी लाना चाहता हूं। यह इस्लाम और मुसलमानों की शान के ख़िलाफ़ नहीं कहा जा सकता। भाषा कभी धर्म की चारदीवारी में बंद नहीं रहती।

मैथिली के संदर्भ को लेकर मुसलमानों से आप क्या कहना चाहेंगे?

बंगाली मुसलमानों की भाषा बंगला, आसामी मुसलमानों की भाषा असमिया, उड़ीसा के मुसलमानों की उड़िया, कर्नाटक के मुसलमानों की कन्नड़, आंध्र प्रदेश के मुसलमानों की भाषा तेलुगू हो सकती है तो मिथिला के मुसलमानों की मातृभाषा मैथिली क्यों नहीं होगी?

मैं मीथिला के मुसलमानों से अपील करना चाहूंगा कि वे इस पर ठंडे दिल से सोचें। मैथिली के लिए आगे आएं। तख़्तोताज, दौलत, ज़मींदारी सब कुछ मुसलमानों के हाथ से चली गई। अब अगर ईमान भी चला जाए तो फिर क्या रह जाएगा?

मैथिली के किन-किन रचनाकारों से आप प्रभावित हैं?

डॉ. भीमनाथ झा, जिन्होंने मिथिला मिहिर में रहने तक पत्र लिखकर व पारिश्रमिक देकर प्रोत्साहित किया। सोमदेव जी ने भी बराबर पत्रों के माध्यम से प्रोत्साहित किया। बेगूसराय के प्रथम ज़िलाधिकारी श्री मन्त्रेश्वर झा के आगमन से संपूर्ण ज़िला साहित्यमय हो गया। वे स्वयं तीन भाषा हिंदी मैथिली और अंग्रेजी के रचनाकार थे। उन्होंने मुझे काफ़ी प्रेरित किया। उनके आलोक से हिन्दी, उर्दू और मैथिली तीनों भाषाएं जगमगाईं। मैं श्री मन्त्रेश्वर झा का एहसानमंद हूं। दूर दृष्टि, विशाल दृष्टि, स्वच्छ हृदय अब स्वप्न सा लगता है। पर, उनकी जलाई हुई शमा आज भी रोशन है। वर्तमान ज़िलाधिकारी कीर्ति सिंह भी साहित्यानुरागी हैं। डॉ. जयकांत मिश्र ने निर्मोही का प्रकाशन कर और पटना में विशाल विमोचन समारोह कर मुझे उत्साहित किया। मैं स्वयं धूप, किरण, सुधांशु शेखर चौधरी, मोहन, हरिओम झा, आरसी प्रसाद सिंह, श्री कुमुद विद्यालंकार आदि के प्रति आभार प्रकट करते हुए सर्वश्री सुमन, अमर, मिथिला मिहिर परिवार, मैथिली और मिथिला दर्पण परिवार, वैदेही परिवार, डॉ. रामदेव, डॉ. सुरेश्वर झा, भाई मोहन भारद्वाज, शेफालिका वर्मा, डॉ. प्रवाध नाथ सिंह, डॉ. अनिमा सिंह, डॉ. नीता झा आदि-आदि का भी शुक्रगुज़ार हूं।

मैथिली वालों के लिए कोई संदेश? हिंदी और उर्दू के विषय में कुछ कहना है?

हिंदी अपनी छोटी बहनों का ख़याल रखे। वह अपना विकास किसी भाषा के विनाश पर नहीं चाहे। उर्दू वाले, उर्दू को मुसलमानों के साथ न जोड़े। इससे उर्दू का बड़ा नुक़सान होगा। मास्टर रामचन्द्र, पंडित चकबस्त महादेव 'आसी', मनोहर सहाय, अनवर, जोश मलसियानी, फराक़ गोरखपुरी, जय नारायण राज, प्रेमचन्द्र, कृष्ण खादर, ख़ुश्तर गिरामी, राजेन्द्र वेदी, सहर, डॉ. अमरनाथ झा आदि-आदि से भी उर्दू का रिश्ता है। जिन्हें ग़ैर मुस्लिम ही कहा जाएगा।

मैथिली वाले दूध, दही और मछली की तरह पत्र-पत्रिकाएं भी ख़रीद कर पढ़ें। दैनिक समाचार पत्र के बारे में भी सोचें। 'अष्टम अनुच्छेद' में प्रविष्टि की हर मुमकीन कोशिश करें। पत्रिका युग की पुकार के अनुरुप हो। मैथिली बोलने में हीनता का अनुभव नहीं करें। साहित्य अकादमी द्वारा प्रकाशित मैथिली पुस्तक को घर में रखें। ●

(4 मई, 1997 को राष्ट्रीय दैनिक समाचार-पत्र कुबेर टाइम्स में प्रकाशित)

नेताओं ने साहित्यकारों को बंधक बना लिया है : डॉ. भगवतीशरण मिश्र

डॉ. भगवतीशरण मिश्र
विश्व प्रसिद्ध उपन्यासकार

आप ऐतिहासिक और पौराणिक उपन्यासों के लेखन में शीर्षस्थ लेखक माने जाते हैं। क्या आप आज भी इस दिशा उतने ही सक्रिय हैं?

आज भी उस दिशा में उतना ही सक्रिय हूं। **'राम बोल रहा हूं'** अभी-अभी प्रकाशित हुआ है। और इसी दिशा में एक और क़दम बढ़ाते हुए सीता के ऊपर काम करना शुरू कर दिया है। **'जनक नंदनी'** के नाम से पुस्तक जल्द ही सामने आएगी।

आपने साहित्य को समृद्ध करने में बहुत बड़ा योगदान दिया है। आप कैसा महसूस कर रहे हैं?

यह तो लोग मानते हैं। कहते हैं कि आपने साहित्य को बहुत समृद्ध किया है, ख़ासकर उपन्यासों के माध्यम से। लेकिन जहां तक अनुभव करने की बात है तो मैं यह कभी नहीं सोचता हूं कि मैं शीर्ष का लेखक हूं। मैं हिंदी साहित्य के लिए जो काम कर रहा हूं, वह लगातार करता रहूंगा। मूल्यांकन तो दूसरे लोग ही कर रहे हैं और करेंगें। **साहित्य को आपने बहुत कुछ दिया। साहित्य ने आपको क्या दिया?**

मैंने साहित्य की समृद्धि में पर्याप्त योगदान दिया। साहित्य से यश-कृति मिली। कुछ पुरस्कार मिले। मुझे कुछ शिकायत नहीं है कि मुझे जितना मिलना चाहिए उतना नहीं मिला। पुरस्कार भी राजनीति से प्रभावित है। उसमें भी तो दांवपेंच है। मैं इस तरह से हाथ-पैर नहीं मार सकता। मेरे अपने पाठक हैं। मेरे पाठक मेरी किताब ख़रीदकर पढ़ते हैं। संतोष की बात यह है कि मैंने एक पाठक वर्ग तैयार किया है। आज भी मेरे पाठकों को मेरी नयी किताब आने का इंतज़ार रहता है। अबतक 84 किताबें आ चुकीं है। 85वीं किताब लिख रहा हूं।

कौन-कौन से पुरस्कार मिले हैं?

उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान द्वारा पुरुषोत्तम और 'पीताम्बरा' पुस्तक के लिए प्रेमचन्द पुरस्कार, राष्ट्रीय बाल विकास परिषद और मानव संसाधन विकास विभाग की ओर से श्रेष्ठ बाल-साहित्यकार पुरस्कार। इसके अलावा पवनपुत्र उपन्यास को मानस संगम की ओर से अंतर्राष्ट्रीय पुरस्कार। उत्तर प्रदेश हिन्दी- उर्दू साहित्य अकादमी की ओर से प्रथम पुरस्कार। समस्तीपुर में आयोजित साहित्य सम्मेलन में यशपाल पुरस्कार। नयी धारा की ओर से श्रेष्ठ लेखक पुरस्कार। हिन्दी अकादमी दिल्ली द्वारा 'साहित्यिक कृति 'सम्मान'। इसके साथ ही साथ राजस्थान साहित्य सम्मेलन के तत्वधान में स्व. पं. हीरा लाल शुक्ल एवं श्रीमती राजेश्वरी देवी शुक्ल पुरस्कार और महाराष्ट्र अनुवाद परिषद की ओर से साहित्य पुरस्कार शामिल है। यह पुरस्कार 2006 में पहला सूरज के मराठी अनुवाद पर दिया गया था।

आप अपनी अमर कीर्ति किसे मानते हैं?

कुछ किताबे हैं मेरी जो कभी नहीं मरेंगी। उनमें 'पवनपुत्र', 'पीताम्बरा', 'पद्मनेत्रा' आदि पुस्तकें कभी मरने वाली नहीं हैं। इनके कई संस्करण निकल चुके हैं। लगभग हर वर्ष नए संस्करण आते हैं।

आज समाज में साहित्य का कितना हस्तक्षेप रह गया है?

साहित्य का हस्तक्षेप तो उस सीमा तक होगा न जिस सीमा तक

साहित्य को पढ़ा जाए। वैसे कोई भी देश हो वह चाहे अमरीका हो या भारत हर जगह किताबों की बिक्री बढ़ी है। लेकिन जिस संख्या में किताब आनी चाहिए आ नहीं रही है।

इसका मूल कारण?

इसके लिए कई कारक उत्तरदायी हैं। इनमें पाठकों का कम पढ़ना भी शामिल है। भ्रष्टाचार एक अहम मुद्दा तो है ही वितरण प्रणाली में भी ख़ूब दोष है। इसके साथ ही किताबों का मूल्य भी अधिक होना एक बहुत बड़ा कारण माना जा सकता है। अगर आज साहित्य का हस्तक्षेप बढ़ा होता तो इतना भ्रष्टाचार नहीं होता। मानवीय मूल्यों का बुरी तरह से ह्रास हो रहा है। समाज और परिवार में बुजुर्ग तिरस्कृत हो रहे हैं। समाज में एक साथ कई तरह की विकृति आ गई है। स्वस्थ साहित्य स्वस्थ संदेश देता है। अगर वह पाठकों तक पहुंचता है तो हस्तक्षेप पूरा होता है। भ्रष्टाचार इस बात को साबित करता है कि समाज में साहित्य का हस्तक्षेप पूरा नहीं है। वरना भ्रष्टाचार इतना नहीं होता।

आपकी नज़र में साहित्य का समाज में कबतक हस्तक्षेप रहा?

मेरी राय में प्रेमचन्द के बहुत बाद तक साहित्य का हस्तक्षेप था। वास्तव में साहित्य समाज को प्रभावित करता है। उच्च मूल्यों की पुनर्स्थापना करना साहित्य का काम है। और मेरी रचना और मेरा पूरा साहित्य इसी से भरा-पड़ा है। ऐसे लेखन करने वाले लेखक कई और भी हैं।

मौजूदा साहित्य में समाज को बदलने की क़ूवत नज़र नहीं आ रही है। इसकी मूल वजह क्या है?

टीवी, इंटरनेट और फ़िल्म मौजूदा यूवा पीढ़ी पर पूरी तरह से हावी है। आज की युवा पीढ़ी इसी की नक़्ल में लगी है। इंटरनेट पर 8-8 घंटे तक लगातार चैटिंग कर रहे युवाओं के पास किताब पढ़ने के लिए कहां समय बचा है? नयी पीढ़ी पर इंटरनेट और इलेक्ट्रोनिक मीडिया हावी है। इस स्थिति में तो वही होगा जो हो रहा है। विचारों का दूषित होना स्वाभाविक है। **आज समाज का तेज़ी के साथ स्तर गिरता जा रहा है लेकिन साहित्यकारों में कहीं बेचैनी नहीं दिखती। आपकी राय?**

साहित्यकारों में बेचैनी है। **'मैं राम बोल रहा हूं'** केवल पौराणिक कहानी नहीं है। आज के भ्रष्टाचार और आतंक की कथा भी इसमें मिलेगी। हां! यह बात इस हद तक सही है कि अधिकांश साहित्यकारों में बेचैनी नहीं है। नये लेखकों का ध्यान इधर नहीं है। तथाकथित प्रगतिशीलता के चक्कर में पड़कर नये साहित्कार अच्छा साहित्य नहीं दे पा रहे हैं। जो स्वस्थ साहित्य रचते हैं उनमें तो बेचैनी हद दर्जे की है। पुरानी पीढ़ी समाप्त

हो जाएगी तो नई पीढ़ी की बेचैनी और भी समाप्त हो जाएगी।

हर तरफ़ राजनीति हावी है। साहित्य में भी राजनीति उतनी ही हावी है। इसका कितना असर साहित्य पर पड़ा है?

राजनीति से आज बच नहीं सकते। राजनीति से विद्वान, समाज और साहित्यकार भी प्रभावित होते हैं। इसका भी कारण है। राजनीतिज्ञों से साहित्यकारों का भी सरोकार और संपर्क रहता है। साहित्यकार उनके लिए भी लिखते हैं। नेताओं ने साहित्यकारों को बंधक बना लिया है। लालू जी पर साहित्यकारों ने कितनी किताब लिख दी। राष्ट्रपति के दौरान कलाम को ख़ुश करने के लिए बहुत साहित्यकार पहुंचे और उनके बारे में बहुत कुछ लिखा। अभी नीतीश जी पर भी कई किताबें निकल चुकी है। साहित्यकार जब चाटूकार बन जाएगा तो साहित्य में राजनीति पूरी तरह हावी हो जाएगी

इस समय साहित्य के किस विधा पर लिखने की ज़्यादा ज़रूरत आप महसूस कर रहे हैं?

देखिए! जो चीज़ें बिकती हैं, वही लिखीं जाती हैं। एक ज़माना था तब कविताएं ख़ूब लिखीं जाती थीं। कविता ख़ूब बिकती भी थी, छपती भी थी और ख़ूब पढ़ी भी जाती थी। आज कविता कोई नहीं पढ़ता।

छंद-बद्ध कविताएं लिखी जाती थीं। आज छंद ख़त्म हो गई।

आपके विचार से कविता किस तरह की होनी चाहिए?

कविता के लिए साहित्य दर्पण में विश्वनाथ ने काव्य को कुछ इस प्रकार से परिभाषित किया है-**'वाक्यं रसात्मकं काव्यम्**। वास्तव में कविता की यही कसौटी है। आज कविता इस तरह से रसविहीन हो गई है कि पाठकों द्वारा पढ़ी नहीं जाती।

इस समय किस विधा में रस नजर आ रहा है?

लेख- निबंध और उपन्यास में रस है। इसलिए आज यह बिकते हैं। आज सबसे ज़्यादा कुछ बिकता है तो वह उपन्यास है। आज कविता पाठकों की ओर से तिरस्कृत हो गई है। इसलिए उपन्यास लिखे भी जाते हैं और वक़्त व मांग के मद्देनज़र लिखना भी पड़ेगा। उपन्यास के माध्यम से संदेश भी दिया जाता है।

आप प्रशासक भी रहे हैं और एक साहित्यकार भी। एक साथ दो चीज़ों को साधने में जाने- अनजाने किसी के साथ नाइंसाफी तो नहीं हुई?

नहीं। प्रशासन का समय कभी मैंने साहित्य को नहीं दिया। रात-रात भर जगकर साहित्य सृजन किया। सूर्यास्त से लेकर सूर्योदय तक लिखा। कार्यालय में मैंने कभी कुछ नहीं लिखा। साहित्य के लिए अलग से समय निकाला। यही वजह है कि आज मेरी छोटी-बड़ी कुल 85 पुस्तकें हैं।

इसके पीछे कोई डर?

डर यही था कि इससे प्रशासन का काम प्रभावित होगा। एक वाक़या मैं आपको सुनाता हूं। जब मैं ग्रामीण विकास में था तब हमारे एक वरिष्ठ अधिकारी ने पूछा कि आप इतनी मोटी-मोटी किताबें कैसे लिखते हैं? मैंने मुस्कुराते हुए जवाब दिया मैं ऑफिस में बैठकर नहीं लिखता हूं। वह भी जवाब सुनकर हंसने लगे।

मैं आपको सच बताऊं मेरा अधिकांश समय आज भी लिखने में जाता है। लोग इस उम्र में आकर कहते हैं कि उनका समय नहीं कटता। मैं कहता हूं कि मेरे पास कैसे समय हो कि मैं कुछ लिखूं।

अक्सर जो लोग प्रशासक होते हैं उन्हें दोयम दर्जे का साहित्यकार माना जाता है। क्या आप इस दृष्टिकोण से इत्तफ़ाक़ रखते हैं?

ऐसा तो कभी नहीं हुआ है। जो भी प्रशासक साहित्यकार हुआ है,अव्वल दर्जे का साहित्यकार हुआ है। साहित्यकारों में कल्पनाशक्ति होती है। कल्पनाशक्ति से प्रशासन में भी मदद मिलती है। जो साहित्यकार नहीं है, उसकी भाषा प्रौढ़ नहीं होगी। एक साहित्यकार फ़ाइल पर बेहतर टिप्पणी देता है। वह बेहतर ढंग से अपने अधिकारियों और मंत्रियों को समझाता है। वह दोयम दर्जे का साहित्यकार क्यों होगा?

प्रशासन में आपका योगदान?

मैं दरभंगा का अनुमंडलाधिकारी और अतिरिक्त ज़िलाधिकारी रहा। शिवहर में ज़िलाधिकारी एवं समाहर्ता रहा। पटना में संयुक्त विकास आयुक्त रहा। नई दिल्ली में लोकसेवा आयोग द्वारा चयनित रेल मंत्रालय, रेल भवन में राजभाषा निदेशक रहा।

आप हिन्दी एवं साहित्य संबंधी स्वतंत्र रुप से धारित सरकारी ओहदे पर भी रहे हैं?

जी हां, बिहार हिन्दी ग्रंथ अकादमी का निदेशक रहा। मैथिली अकादमी का निदेशक रहा। व्यस्क शिक्षा संसाधन केन्द्र का निदेशक रहा। रेल मंत्रालय में राजभाषा निदेशक रहा। इसके अलावा बिहार सरकार में 1985-1990 तक राजभाषा विभाग में निदेशक रहा।

आख्यायिनी के अलावा भी आपने किसी पत्र-पत्रिकाओं का संपादन किया है? हालाकि आख्यायिनी पांच अंकों तक ही निकल पायी। लेकिन इस दरम्यान उसने अपार लोकप्रियता हासिल की। आख्यायिनी के अलावा मैंने अकादमी मासिक पत्रिका, व्यस्क शिक्षा समाचार दैनिक बुलेटिन एवं राजभाषा मासिक पत्रिका का भी संपादन कार्य किया।

सम्मान के बारे में आपका अपना क्या नज़रिया है। क्या बड़े-बड़े सम्मान से ही कोई बड़ा साहित्यकार होता है?

सम्मान के बारे में दो बाते हैं। पहली बात तो यह है कि आजकल सम्मान के पीछे घोर राजनीति है। वहां कई तरह की पैरवी की बात आती है। यह सुनकर बहुतों को ताज्जुब और मुझे अफसोस होता है कि कई बार पुरस्कार देने से पहले आधी पुरस्कार की राशि रखवा ली जाती है और कहा जाता है कि आधी राशि आपको सम्मान में दी जाएगी। दूसरी बात, कोई भी बड़ा साहित्यकार बड़े सम्मान से नहीं होता है। अंततः कोई भी लेखक अपने लेखन से ही जाना जाता है। वह मिले सम्मान के नाम से नहीं जाना जाता है। मुझे कितने सम्मान मिले उससे मुझे कोई नहीं जानता है। बड़ा बनने के लिए ऊंचे लेखन की ज़रूरत है।

आप अपनी सबसे बड़ी उपलब्धि क्या मानते हैं?

सबसे बड़ी उपलब्धि है ऐतिहासिक-पौराणिक उपन्यासों की रचना। मैंने इन पुस्तकों के ज़रिये समाज में उन्नत मूल्यों की स्थापना करने का प्रयास किया है। पुस्तकों की अत्यधिक क़ीमत होने के बावजूद पाठकों ने ख़रीदकर पढ़ा। और लगातार पढ़ रहे हैं। और यह जो मेरा पाठक वर्ग बना है इसे मैं अपनी उपलब्धि मानता हूं। मेरा पाठक मेरी हर आने वाली पुस्तकों की प्रतीक्षा करता है। इसे ही मैं अपनी उपलब्धि मानता हूं।

इस समय आप क्या लिख रहे हैं। आपकी आने वाली किताब कौन सी है?

सीता पर पुस्तक लिख रहा हूं। फिलहाल जनक नंदनी नाम रखा है।

संभव है कि अंतिम समय में नाम में कुछ परिवर्तन भी हो जाए।

आप नये साहित्याकारों को कोई टिप्स देना चाहेंगे जिससे उनका साहित्य सचमुच में समाज के लिए दर्पण हो ?

देखिए, पहली बात तो यह है कि साहित्य समाज का दर्पण है यह परिभाषा सदा साहित्य के साथ लागू होती नहीं है। श्रेष्ठ साहित्य के साथ तो लागू होती ही नहीं है। आज समाज में कदाचार, यौनाचार, दुर्व्यवहार नारी-उत्पीड़न, हत्याएं एवं लूट का बोलवाला हैं। अगर साहित्य में यही सब दिखाएंगे तो पाठक इन्हीं को अपनाएगा।

नयी पीढ़ी को चाहिए कि वह समाज में व्याप्त मौजूदा विकृतियों के विरुद्ध लिखे जिससे इन विकृत मूल्यों का विघटन समाप्त हो। स्वस्थ मूल्यों की स्थापना हो। नयी पीढ़ी के साहित्यकार समाज के सुधारक के रुप में काम करें। समाज के दर्पण के रुप में नहीं। स्वस्थ मूल्यों की स्थापना के लिए अपनी कृतियों के माध्यम से संदेश दें।

अन्य राज्यों से अगर इसकी तुलना की जाए तो साहित्य सृजन में इस समय बिहार किस पायदान पर खड़ा नज़र आ रहा है ?

हम तो इसकी हिन्दी राज्यों से ही तुलना करेंगे। वह चाहे राजस्थान हो, यूपी हो, एमपी हो, हिमाचल प्रदेश हो या दिल्ली। जहां तक पायदान की बात है तो यूपी और दिल्ली के बाद बिहार का स्थान आता है।

बिहार की मौजूदा राजनीतिक स्थिति से आप कितने संतुष्ट हैं ?

मौजूदा राजनीति से मैं पूरी तरह संतुष्ट हूं। मैने बिहार में शासन के कई दौर को बड़े क़रीब से देखा है। मैं जगन्नाथ मिश्रा के शासन से पहले से प्रशासन में रहा हूं। जगन्नाथ जी की राजनीति संतोषजनक थी। लालू प्रसाद यादव ने बिहार की राजनीति को ख़राब कर दिया। उनके शासन काल में राजनीति न केवल भ्रष्टाचार का पर्याय बनी बल्कि इस दौरान निरंकुशता, हत्या, बलात्कार, अपहरण और अनुशासन चरम पर पहुंच गया। इस कार्यकाल में शासन और प्रशासन नाम की कोई चीज़ नहीं रही। विकास पूरी तरह समाप्त हो गया।

नीतीश जी ने जो काम शुरू किया है वह संतोषजनक है। आज विकास हुआ है। अपराध पर अंकुश लगा है। शाम में अब औरतें और लड़कियां अपने घर से बाहर निकल पा रही हैं।

आपके विचार से वहां क्या और कैसा बदलाव होना चाहिए ?

देखिए, विकास के लिए बिजली चाहिए। बिजली का प्रबंध होगा तो विकास भी तेज़ी के साथ होगा।

नीतीश जी की तुलना आप बिहार के प्रथम मुख्यमंत्री श्रीकृष्ण सिंह से करना चाहेंगे ?

सच कहूं तो नीतीश जी ने बिहार के उत्थान के लिए बिहार केसरी श्रीकृष्णजी से भी ज़्यादा काम किया है। इसमें भी शंका है कि अगर आज के हालात उस समय होते तो श्रीकृष्ण सिंह भी हालात पर उतना क़ाबू कर पाते या नहीं जितना नीतीश जी ने किया। इसलिए मैं नीतीश जी को श्रीकृष्ण सिंह के समकक्ष नहीं उनसे ऊपर का राजनीतिज्ञ मानता हूं।

आप बिहार से आते हैं बिहार की साहित्यिक गतिविधयां को आज कहां पाते हैं ?बिहार की साहित्यिक गतिविधियां संतोषजनक हैं। वहां लिखा जा रहा है। वहां कहानीकार भी हैं। लघुकथाकार भी हैं। कुछ सीमा तक उपन्यासकार भी हैं। कठिनाई यह है कि बिहार में प्रकाशक नहीं है। सारे प्रकाशक सीमित हैं और वे दिल्ली में हैं। इसलिए भी अधिक नहीं लिखा जा रहा है। लेखकों को प्रकाशक मिलते नहीं हैं। बिहार की भूमि सदा से उपजाऊ रही है। रामबृक्ष बेनीपुरी और राजा राधिका रमण प्रसाद हुए जिनसे बिहार में उपन्यास प्रारंभ होता है। आज की स्थिति बड़ी उल्टी हो गई है। पहले तो प्रकाशक लेखक को पैसा देता था। आज लेखक प्रकाशक को पैसा दे रहे हैं। इसलिए बड़ी मात्रा में पुस्तकें नहीं प्रकाशित हो पा रही हैं। बिहार में बहुत ऐसे साहित्यकार मौजूद हैं जिनकी डायरियां साहित्य से भरी-पड़ी हैं।

बिहार के किस साहित्यकार से आप प्रभावित हैं ?

राजा राधिका रमण प्रसाद सिंह, रामधारी सिंह दिनकर को मैं सम्मान देता हूं। प्रभावित होने की बात मैं नहीं कह सकता। कविता मेरा क्षेत्र नहीं है। मैं अगर प्रभावित रहा तो बाहर के साहित्यकारों से। अमृत लाल नागर, आचार्य चतुरसेन शास्त्री और वृंदालाल वर्मा ये सारे एक तरह से ऐतिहासिक उपन्यासकार रहें। मुझे मुख्य रुप से प्रेरणा अमृत लाल नागर जी से मिली। ●

(आमने-सामने)

»डॉ. विश्वनाथ त्रिपाठी
प्रसिद्ध आलोचक-साहित्यकार

यथार्थ का साहित्य वस्तुनिष्ठ होता है : डॉ. विश्वनाथ त्रिपाठी

पूर्वी उत्तर प्रदेश के ज़िला सिद्धार्थनगर गांव बिस्कोहर में सन् 1931 में जन्मे डॉ. विश्वनाथ त्रिपाठी ने हिन्दी के वरिष्ठ साहित्यकार एवं आलोचक के रूप में ख़ूब प्रसिद्धि पाई। गुरुवर आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के साथ अपभ्रंश काव्य संदेश रासक के संपादन कार्य का गौरव भी हासिल किया। इन्होंने हिन्दी आलोचना, लोकवादी तुलसी दास, मीरा का काव्य, जैसा कह सका, देश के इस दौर में, कुछ कहानियां कुछ विचार जैसे प्रमुख ग्रंथों की रचना की। लगभग चार दशकों तक देश के प्रतिष्ठित शिक्षा संस्थानों में जुड़े रहे। इन्हें इनकी कृतियों पर सोवियत लैंड नेहरू पुरस्कार, हिन्दी अकादमी पुरस्कार, आचार्य रामचंद्र शुक्ल शोध संस्थान का गोकुल चंद पुरस्कार समेत कई अहम पुरस्कार दिए जा चुके हैं। उनके विचार में उर्दू-हिन्दी भाषा का कोई विवाद नहीं है। बस, दोनों एक दूसरे को अपना लेने की दिशा में पहल मात्र भी कर लें तो सारा रास्ता समाधान की तरफ़ ही जाता है।

ए आर आज़ाद

वर्तमान समय में अंग्रेज़ी से हिन्दी को कितना नुक़सान हो रहा है? गांधीजी ने कहा था कि किसी भी भाषा व विचार के लिए हमें अपने मस्तिष्क की खिड़कियों को खुला रखना चाहिए और उसके साथ आने वाले अच्छे विचारों व सूत्रों को ग्रहण करना चाहिए। आज की परिस्थिति में गांधीजी का यह विचार कितना प्रासंगिक है?

अंग्रेज़ी की भूमिका नकारात्मक ही नहीं रही। स्वतंत्रता संग्राम में एक सीमा तक हमने सकारात्मक भूमिका निभाई है। लेकिन यह सवाल दूसरा है। सवाल यह है कि जो भाषा है वह तो हमारी अस्मिता का प्रतीक होती है। और जब हम अस्मिता का प्रतीक कहते हैं तो सिर्फ़ प्रतीक नहीं होता है। हमारे देश में अंग्रेज़ी शोषकों, सम्पन्न लोगों और इस देश की जो सामान्य जनता हैं उनकी उपेक्षा करने वाले लोगों की भाषा है।

डॉ. लोहिया के इस विचार से मैं सहमत हूं कि हमारे देश में जो उच्च वर्ग हैं उनके पास तीन हथियार हैं। वर्ण, शिक्षा और अंग्रेज़ी। अंग्रेज़ी जो शर्मनाक भूमिका अदा कर रही है वह भारतीय भाषाओं को दबाकर उसका अधिकार ख़ुद ले लेती है। इस देश में अंग्रेज़ी जानने वालों की संख्या कम है लेकिन उच्चतम न्यायालय, उच्च न्यायालय से लेकर बड़ी-बड़ी संस्थाओं की भाषा अंग्रेज़ी है। आम आदमी को सज़ा या निर्णय उस भाषा में सुनाया जाता है जिसे वह समझता ही नहीं है। हमारे शासक ग़रीब की परवाह ही नहीं करते। आप दूरदर्शन का कार्यक्रम देखें तो कोई ग़रीब आदमी दिखाई पड़ेगा ही नहीं। इन सब चीज़ों का गहरा संबंध गांधीजी से है। अंग्रेज़ी की समस्या देश की ग़रीबी से जुड़ी हुई है। गाय की स्थिति इस देश में ग़रीब आदमी की होती जा रही है। अंग्रेज़ी की प्रबलता हमारे देश के नेताओं की मनोवृत्ति का परिणाम है। अब ज़्यादातर जो आंदोलन दिखाई या सुनाई पड़ते हैं वह सम्पन्न लोग करते हैं। जैसे बाल ठाकरे को गिरफ़्तार क्यों किया गया? आज देश भक्ति शब्द का इस्तेमाल करता हुआ कोई नज़र नहीं आता। उसी प्रकार ग़रीबी, बेरोज़गारी और महंगाई जैसे शब्द बहुत कम छपे व सुनाई पड़ते हैं।जहां तक गांधीजी की बात है तो सिर्फ अंग्रेज़ी की ही नहीं बल्कि सभी संदर्भों में वह उस समय से ज़्यादा प्रासंगिक आज है।

उर्दू-हिन्दी के संबंध पर आपका दृष्टिकोण?

भाषा विज्ञान का ऐसा कोई नियम नहीं है जिसके आधार पर यह साबित किया जा सके कि हिन्दी और उर्दू दो अलग-अलग विषय हैं। संसार की कोई दो कही जाने वाली भाषा नहीं है, जो इतना समान हो। जिनकी बोलियां एक हों। जो एक जगह पर बोली जाती हैं। जिनके साहित्यकार इतने ज़्यादा मिलते-जुलते हों। लेकिन एक वास्तविकता ऐसी होती है कि इन सब पर बात होती है। जब तक उर्दू वाले यह नहीं कहते कि उर्दू-हिन्दी एक है; तब तक उसे हम दो भाषा मानते हैं।

हंस के संपादक राजेन्द्र यादव के लेख होना सोना एक ख़ूबसूरत दुश्मन के साथ से साहित्य व मीडिया जगत में काफ़ी हंगामा बरपा हुआ है आप इसे किस रूप में देखते

हैं?

हम इस रूप में देखते हैं कि यह जो हंगामा है वह प्रायोजित है। हिन्दी के कुछ ऐसे लेखक हैं जिनके पास लिखने की क्षमता नहीं रह गयी है। लेकिन चर्चा का चस्का लगा हुआ है। राजेन्द्र यादव किसी न किसी तरीक़े से अपने को चर्चा के केन्द्र में रखना चाहते हैं। आप नारी विमर्श करें या दलित विमर्श करें। नारी से क्या आप सहानुभूति रखने वाले हैं। नारी को सिर्फ शरीर समझते हैं। आप के पास नारी का इतिहास नहीं है, सिर्फ भूगोल है। वह भी जवानी का। बुढ़ापे में औरत की क्या स्थिति होती है? लड़की पढ़ने क्यों नहीं जाती? ग़रीब औरत को रोज़गार क्यों नहीं दिया जाता है? राजेन्द्र यादव उस पर कोई विचार नहीं करते। इसलिए नारी विमर्श के नाम पर अपने को केन्द्र में लाना चाहते हैं। राजेन्द्र यादव और उनकी मंडली का नारी विमर्श अमरकांत की कहानी दोपहर का भोजन, विष्णु खरे की कविता लड़कियों का बाप, भीष्म की कहानी चीफ की दावत की तरह का नहीं है। मेरी बात को राजेन्द्र यादव जितनी जल्दी समझ लें उनके लिए हितकर होगा।

आज युवाओं द्वारा जो कुछ लिखा जा रहा है। क्या वह साहित्य और इससे जुड़े लोगों को संतुष्ट कर पा रहा है या स्वान्तः सुखाय बनकर ही रह जा रहा है?

स्वान्तः सुखाय बहुत बड़ी रचना होती है। अच्छी रचनाएं भी हो रहीं हैं और बुरी भी। हर समय में ऐसा होता रहा है। स्वान्तः सुखाय में यह होता है कि आपका अंतस कितना बड़ा है। गांधीजी अनशन करते थे तो सब लोग अनशन करते थे। और अब कोई अनशन करता है तो मज़ाक बन जाता है।

आज का साहित्य वर्तमान समस्याओं एवं स्थितियों से साक्षात्कार में कितना सक्षम प्रतीत हो रहा है।

जो अच्छा साहित्य लिखा जा रहा है वह आज के साहित्य को सबल करने में सक्षम है। सबसे ज़्यादा अच्छी रचनाएं साहित्य की नवीनतम जोड़ी है,वह कर रही है। साहित्य में भी माफ़िया आ गया है, प्रकाशन में भी। अच्छे साहित्य को लिखने के लिए साधन मुहैया नहीं कराया जा रहा है। अच्छी चीज़ को अच्छी न कहना और बुरी को बुरी न कहना ही बड़ी बुरी स्थिति है। अच्छी रचनाएं लिखी जा रहीं हैं।

साहित्य की किस विधा पर ध्यान देने की अधिक आवश्यकता है?

नाटक।

इसका कारण?

यथार्थ का साहित्य वस्तुनिष्ठ होता है। लिखित नाटक हमेशा अधूरा होता है। वह मंचन के बाद पूरा होता है। कथनी और करनी में बहुत ज़्यादा अंतर जब आ जाए तभी नाटक का जन्म होता है। आज कथनी और करनी में जितना अंतर है उसमें नाटक ही सर्वोपरि है।

इस इंटरव्यू का समापन आपकी पसंदीदा कविता के साथ हो जाए?

मैं आपको अपनी पत्नी कविता सुनाता हूं:-

उसने रीति कालीन नायिकाओं से कुछ नहीं लिया
न कमल से मुख
न भेड़ से कमर
न हंस से गति
उसने उसी का सब कुछ ले लिया
जिसे मैं पा नहीं सका था
जिसे आकाश की नीलिमा कहता था
और
भाव-विभोर होकर
अपनी चेतना की सार्थकता...।

अब उसके पैर मेरे अधर हैं
तो उसके अधर मेरे दांत
विविध मसालों की गंध से पूरित उसका पीला पेट
मेरी सकल सम्भावनाओं की सीमा हैयह सोचकर अक्सर
सहम जाता हूं
कि इसमें कितनी बार क़ैद हो चुका हूं

अब तो उसमें कहीं खरोंच भी लग जाती है
तो अचकचा उठता हूं
कि गहरी नींद में सोते बच्चे चिंहुक तो नहीं पड़े....।

तो क्या नहीं हो सकता
एक कप चाय पहाड़ी ठुमरी की रविशंकरी
तोड़ भी
और वही
धुंधलके में चीते की सुर्ख़ आंख भी
यह एक रिश्ता है कि
वह मेरे बौने व्यक्तित्व का विष पीती है
और बच्चे को दूध पिलाती है....। ●

(आमने-सामने)

मन्त्रेश्वर झा
हिन्दी, मैथिली एवं अंग्रेज़ी के प्रसिद्ध साहित्यकार

आज के युग में साहित्यकार की भूमिका काफी कठिन हो गई है: मन्त्रेश्वर झा

मन्त्रेश्रर झा को तीन भाषाओं में लेखन करने का गौरव हासिल है। अब तक इन्होंने तीन दर्जन से भी अधिक उच्च स्तरीय पुस्तकों की रचना की है। वरिष्ठ आईएएस के नाते प्रशासन में कई अहम पदों पर सुशोभित हुए। इन्हें महाकवि कुमुद विद्यालंकार अवार्ड, साहित्य अकादेमी अवार्ड समेत कई अहम पुरस्कार मिल चुके हैं। मन्त्रेश्वर झा स्वभाव से बतौर साहित्यकार बड़े कोमल और बतौर प्रशासक बड़े कठोर रहे हैं।

एक लेखक के रूप में आप यह बतायें कि मौजूदा दौर में लेखक की वैचारिक प्रतिबद्धता कितनी आवश्यक है?

किसी भी दौर में लेखक की वैचारिक प्रतिबद्धता ज़रूरी होती है। वैचारिक प्रतिबद्धता का मतलब किसी राजनीतिक विचारधारा से नहीं है। इसका मतलब है कि आप आम जन की समस्याओं के प्रति उसका कितना सरोकार आपके लेखन में परिलक्षित होता है।

क्या बेहतर रचना और प्लेटफॉर्म के लिये लेखकों को किसी 'वाद' से जुड़े रहना चाहिये?

बिल्कुल नहीं। केवल किसी मान्यता से या पुरस्कार से जुड़ने के लिये कोई लेखक लेखन करता हो तो वाद से जुड़ने का महत्व होता है। अन्यथा लेखक को स्वतंत्र रूप से लेखन करना चाहिये। उसके केन्द्र बिन्दु में आम आदमी और उसका माहौल ही सर्वोपरि होना चाहिये।

क्या वह लेखक किसी भी विषय वस्तु के साथ न्याय कर पाता है जो किसी विचारधारा को लेकर आगे बढता है?

विचारधारा का मतलब किसी राजनीतिक विचारधारा से है तो निश्चय ही वह विषय-वस्तु से न्याय नहीं करेगा। लेकिन विचारधारा से मतलब जन साधारण और आम पाठक की अभिव्यक्ति और उसकी समस्या से संबंधित है तो वह निश्चय ही उस विषय-वस्तु से न्याय कर पायेगा।

इस दौर के साहित्य को खुद साहित्यकारों ने प्रभावित किया है या इसमें देश की मौजूदा राजनीति ने बड़े पैमाने पर प्रभावित करने का काम किया है?

राजनीति तो जीवन और लेखन दोनों को प्रभावित करती ही है। अच्छा साहित्य सामाजिक चिन्तन में क्रांति नहीं तो उथल-पुथल ज़रूर लाता है।

आपका साहित्य किस विचारधारा की ऊपज है?

मैं मूल रुप से स्वान्तः सुखायः लिखता हूं।

जब आप किसी रचना को अंतिम रूप दे रहे हों तो क्या आज भी वही ख़ुशी मिलती है जो ख़ुशी पहली बार में मिली थी?

कुछ अंशों में अब ज़्यादा ख़ुशी मिलती है। पहली रचना में जो आह्लाद होता था वह तो अब नहीं होता है लेकिन जीवन के इस पड़ाव में जब कोई रचना सृजित होती है तो एक अलग प्रकार की प्रसन्नता होती है।

आज की रचना और साहित्य-सर्जन से आप कितने प्रसन्न हैं?

रचना से तो प्रसन्नता होती है लेकिन रचनाकारों को जो मान्यता मिलनी चाहिये वह विभिन्न कारणों से समाज से नहीं मिल पाती है। हिन्दी साहित्य हो अथवा क्षेत्रीय साहित्य प्रकाशन-वितरण की समस्या बनी हुयी है। केवल अंग्रेज़ी की पुस्तकें ही बेस्ट सेलर की सूची में आ रही हैं। यह राष्ट्रीय भाषाओं के लिये ख़तरे की घंटी है।

मौजूदा समय में साहित्य के लिये सबसे बड़ी चुनौती और सबसे बड़ा ख़तरा क्या है?

ऊपर के प्रश्न में मैंने इसका उत्तर दे दिया है। अपने देश में या तो लोग अशिक्षित हैं या शिक्षा अंग्रेज़ीमुखी होती जा रही है। इसलिये राष्ट्रीय और क्षेत्रीय भाषाओं के लेखक और प्रकाशक अपने को ज़्यादातर उपेक्षित महसूस कर रहे हैं।

आपने तीन दर्जन से अधिक पुस्तकें लिखी हैं। कौन सी पुस्तक आपको सबसे ज़्यादा सुखद भाव देती है।

यह कहना तो बहुत कठिन है। हर दौर में अलग-अलग पुस्तक से अलग-अलग तरह का आनंद प्राप्त हुआ है। कभी कविता-लेखन में,

कोई एक ऐसी घटना जो आपको आज भी उद्वेलित करती हो?

ऐसी ही घटनाओं का ''कतेक डारिपर'' पुस्तक में ज़िक्र है। घटनाएं अनेक हैं-शुरूआत से लेकर आख़िर तक।

प्रशासन के किस पद पर रहकर आपने सबसे ज्यादा साहित्य सेवा की?

आमतौर से मैं जब प्रशासनिक कार्यों में अधिक व्यस्त रहा उस काल में मैंने अधिक रचनाएं लिखीं। केवल अपवाद स्वरूप जब मैं बिहार राज्य इलेक्ट्रोनिक विकास निगम में था, जहां काम नहीं के बराबर था तब मैंने लगभग एक दर्जन नाटक/ एकांकी लिखा। और

कभी व्यंग्य-लेखन में, कभी नाटक-लेखन में। तत्काल अभी जो नयी पुस्तकें प्रकाशित हुयीं हैं, उसी से ज़्यादा प्रसन्न हूं।

आपने अभी अभी कतेक डारि पर अपने प्रशासकीय अनुभव को दर्शाया है-इसकी प्रेरणा कहां से मिली?

पुस्तक पढ़ने से पाठक को पता चल जायेगा कि प्रेरणा कहां से मिली। उसमें मैंने विस्तार से इसका उल्लेख किया है। देश में किसी भी भाषा में आत्मकथात्मक लेखन बहुत कम हो रहा है। इस तरह से साहित्यिक विधा का एक महत्वपूर्ण पक्ष गौण हो रहा है। अतः मैंने अपने प्रशासकीय जीवन का कच्चा चिट्ठा लिखने की कोशिश की है।

आपने इस पुस्तक में बिहार के नेताओं में लालू प्रसाद यादव की ख़ूब खिचाई की है। उनके साथ कोई पुरानी रंजिश अथवा सच्चाई के साथ ताक़त उगलने की यह आपकी शक्ति है?

यह बात ग़लत है कि मैंने किसी की खिंचाई की है। मैंने तो केवल घटनाओं का ज़िक्र किया है। कुछ ऐसे भी स्थल हैं जहां मैंने लालू प्रसाद यादव की प्रशंसा भी की है।

अन्य प्रशासकीय एवं राजनीतिज्ञों के बारे में भी मैंने अपने अनुभवों का उल्लेख किया है। इसमें किसी प्रकार की मेरी दुर्भावना नहीं है।

इसे मैथिली में ही क्यों प्रकाशित किया? जबकि बिहार और देश में हिन्दी वाले पाठकों के लिये इसे अनुवाद कराकर पढ़ना कठिन है।

इस प्रश्न का उत्तर मैंने पुस्तक की भूमिका में दे दिया है। मैं चाहूंगा कि आपके पाठक पुस्तक नहीं पढें तो भूमिका ज़रूर पढ़ लें।

हिन्दी के प्रकाशक अगर मिलें तो?

अगर कोई प्रकाशक इसका हिन्दी अनुवाद छापे तो मुझे खुशी होगी। उसके अनुवाद के लिये मैं स्वयं तैयार हूं।

आपने प्रशासन और साहित्य-सर्जन के साथ समान रूप से कैसे ईमानदारी निभाई?

मैंने प्रशासन एवं साहित्य में समान रूप से ईमानदारी निभाने की कोशिश तो ज़रूर की लेकिन मुझे इस बात का दुख है कि प्रशासन में लोग मुझे साहित्यकार के रूप में जानते रहे और साहित्य में मुझे प्रशासक के रूप में। नतीजा यह हुआ कि न मैं घर का रहा न घाट का।

आपने प्रशासन के एक से एक ओहदे को सुशोभित किया है,

उसे प्रकाशित कराया।

आपने एक दर्जन पुस्तकें कब से कब तक और कितने समय में लिखी?

लगभग तीन वर्षों के काल में यानी 199० से 1994 के बीच।

क्या नहीं लिखने का ग़म और क्या लिखने की तमन्ना है? उपन्यास लिखने की तमन्ना है। एक उपन्यास की शुरूआत की थी। अधूरा पड़ा है। एक नया उपन्यास लिखूं इसी को लेकर मंथन चल रहा है।

आपने अपना पूरा समय मैथिली के लिये समर्पित कर दिया। मैथिली ने आपको क्या दिया?

मातृभाषा मां के समान होती है। अपनी मां के प्रति कर्तव्य करने में कुछ पाने की शर्त नहीं होती है।

आप कभी यह महसूस नहीं करते कि अगर आपने मैथिली में न लिखकर हिन्दी में रचना की होती तो आज एक साहित्यकार के रूप में आपकी पहचान देश में और कुछ होती?

यह तो निर्विवाद है कि हिन्दी का फलक राष्ट्रभाषा के रूप में मैथिली की तुलना में बहुत बड़ा है। वैसे तो मेरी कुछ मैथिली रचनाओं का हिन्दी में अनुवाद छपा है। आज से लगभग 35-36 साल पहले सारिका में मेरी एक मैथिली कहानी का अनुवाद भी छपा था। इसी तरह लखनऊ से प्रकाशित कंचन प्रभा में भी मेरे कुछ व्यंग्य छपे थे। लेकिन प्रशासकीय कार्यों में इतना उलझा रहा कि हिन्दी जगत में प्रवेश करने का मुझे अवसर नहीं मिला।

क्या कभी आपको लगा कि आप प्रशासक नहीं होते तो और अच्छे लेखक होते? कारण एक आईएएस अधिकारी के लिये प्रशासन सेवा के बाद समय निकालना कितना कठिन होता है, इसे आप ख़ुद भली भांति समझ सकते हैं?

यह कहना मुश्किल है। हम प्रशासक नहीं होते तो प्राध्यापक होते। कहीं किरानी होते। केवल लेखक बनकर जीवन यापन करना अपने देश में लगभग असंभव है।

प्रशासन में मुझे रहने के जो विविध अनुभव हुये हैं उससे मैं वंचित रहता, अगर प्रशासन में नहीं रहता। लेकिन निःसन्देह प्रशासन में नहीं रहने से मुझे लिखने का और अधिक समय मिलता। इसके साथ ही साहित्य राजनीति अथवा ख़ेमेबाज़ी जिससे कि मैं अछूता रहा हूं, उससे

अछूता नही रहता।

पुरस्कार को लेकर आपकी क्या मान्यता है?

किसी भी लेखक को सबसे बड़ा पुरस्कार पाठक से मिलता है। शेक्सपीयर को लें, विद्यापति को लें अथवा कालीदास को, लोग उन्हें इसलिये नहीं याद करते कि उन्हें किसी प्रकार का पुरस्कार मिला था। मेरे विचार से पुरस्कार एक प्रोत्साहन ज़रूर होता है लेकिन इसकी ज़रूरत किसी लेखक को युवा अवस्था में कहीं अधिक होती है। इसलिये मैं जल्द ही युवा रचनाकारों के लिये एक पुरस्कार योजना प्रारंभ करने जा रहा हूं।

अब तक कितने पुरस्कार आप तक पहुंचे?

पहला पुरस्कार आज ही मिल रहा है।

कुमुद विद्यालंकार राष्ट्रीय पुरस्कार आपको प्रदान किया जा रहा है-कैसा महसूस करते हैं?

बहुत ख़ुशी हो रही है। मेरे जीवन का पहला साहित्यिक पुरस्कार है। इसको मैं सहेज कर रखना चाहूंगा। **महाकवि कुमुद जी के संदर्भ में आपकी प्रतिक्रिया?**

महाकवि कुमुद विद्यालंकार की विद्यापति पदावली समीक्षा जो एम ए के पाठ्यक्रम में शामिल थी, को पढ़ता रहा। लेकिन तब यह नहीं पता था कि वह बिहार के ही हैं और उस जनपद बेगूसराय के हैं, जहां का मैं लगभग दो वर्षों तक पहला कलक्टर रहा। उनसे मिलने का पहला अवसर 1992 में मिला। उनसे मिलकर यह विश्वास हो गया कि आचार्य कुमुद विद्यालंकार वास्तव में साहित्य के दादा हैं। इसलिये तो साहित्यकार उन्हें दादाजी कह कर संबोधित करते रहें। वे त्याग, अपनापन, आत्मीयता और आत्मनिर्भरता के बेजोड़ मिसाल थे। वे दानी थे, अभिमानी नहीं। वास्तव में वे साहित्य के शिखर-पुरुष थे।

उन्हें आप देश के किन साहित्यकारों की पंक्ति में खड़ा करना चाहेंगे?

उनकी कुछ ही पुस्तकों को पढ़ने का सुअवसर मिला है। लेकिन उनकी पुस्तक सूची और मेधा को देखकर यह पूर्ण विश्वास के साथ कह सकता हूं कि वे हिन्दुस्तान की उच्च कोटि के साहित्यकारों की श्रेणी में प्रथम पंक्ति के साहित्यकार थे।

कुमुद विद्यालंकार को आप कब से जानते हैं। पहली मुलाक़ात कब हुई?

श्री कुमुद विद्यालंकार से मेरी पहली मुलाकात पटना में 1992 में श्री आजाद के सौजन्य से हुई थी। वह क्षण बहुत सुखद था जब एक मनस्वी, चिंतक एवं महान साहित्यकार के दर्शन करने का मुझे सौभाग्य प्राप्त हुआ। कुमुद जी का नाम मैंने बचपन में ही सुना था।

आपने उनकी कोई पुस्तक पढ़ी है?

उनके द्वारा संपादिक पुस्तक 'विद्यापति की पदावली' पढ़ने का मुझे सुअवसर पहले मिला था, लेकिन मुझे कहा पता था कि कुमुद जी अपने बिहार के हैं और उस पर बेगूसराय ज़िले के, जहां मैं 1972-74 तक कलक्टर के रूप में पद स्थापित था।

जब आप बेगूसराय में पदस्थापित थे तब उनके बारे में आप तक क्या जानकारी पहुंची?

बेगूसराय जिले में जब मैं पदस्थापित था तब मुझे जिले के लगभग सभी वरीय एवं नौजवान साहित्यकारों से मुलाकात करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था। इस अवधि में लगता है कि कुमुद जी बेगूसराय में नहीं रहते थे अथवा साहित्यिक गतिविधियों में वे शामिल नहीं होते थे अथवा उन्हें शामिल नहीं किया जाता था। दुर्भाग्यवश मैंने कुमुद जी का प्रसंग किसी साहित्यिक गोष्ठी में कभी नहीं सुना।

महाकवि कुमुद विद्यालंकार के संपूर्ण जीवन की समीक्षा करते हुए उनकी पत्रकारिता और साहित्यिक कृतित्व के मद्देनजर उनकी तुलना आप किन-किन नामवर साहित्यकारों से करेंगे?

जब से मैंने कुमुद जी को जाना है तब से उनकी मेधा, प्रतिभा तथा उनके स्वाभिमान को देखकर चकित एवं चमत्कृत होता रहा हूं। तेरह वर्ष की आयु में चिंगारी पत्रिका निकाल कर ब्रिटिश दमन का शिकार होते हुए तथा जेल यात्रा करते हुए वे पूरे जीवन यायावर होकर रहे और फक्कड़ का जीवन जिया। इस दृष्टि से मैं उन्हें नागार्जुन के करीब पाता हूं। कई दैनिक, साप्ताहिक, मासिक पत्रिकाओं का संपादन एवं समीक्षा पुस्तक लेखक के रूप में उनका आकलन किया जाए तो वे शिवपूजन सहाय के करीब नज़र आते हैं। उनकी काव्य रचनाओं पर ध्यान दिया जाए तो जैसा कि राष्ट्र कवि मैथिली शरण गुप्त ने स्वयं कहा था, उन्हें जयशंकर प्रसाद तथा मैथिलीशरण गुप्त की श्रेणी में रखा जा सकता है। **कुमुद जी जैसे साहित्यकार, साहित्यसेवी, समाजसेवी और पत्रकार जिन्होंने अपना सर्वस्व देश, गांव और समाज के लिए न्योछावर कर दिया। ऐसे राष्ट्र निर्माता का लंबे समय तक उपेक्षित जीवन गुजारने को लेकर मीडिया में कोई सुगबुगाहट दिखाई नहीं दी। देश, समाज, सरकार के साथ-साथ मीडिया ने भी उनकी सुध नहीं ली। आपकी**

राय ?

यह दुखद सच है कि कुमुद जी को साहित्यकार और समाज ने उनके जीतेजी उनका वैसा मूल्यांकन नहीं किया जिसके वे हक़दार थे। मुझे निश्चित विश्वास है कि कुमुद जी ने कभी भी मान-सम्मान, पैसा अथवा पहचान के लिए इतना संघर्ष नहीं किया होगा। संघर्ष करने वाले या सृजन करने वाले किसी प्रतिष्ठा के लिए या पैसों के लिए संघर्ष या सृजन नहीं करते हैं। संघर्ष और सृजन का अपना स्वयं जो आनंद है वही किसी व्यक्ति को 90 वर्ष तक संघर्षरत रख सकता है, कोई मान-सम्मान या पहचान नहीं। निस्संदेह यह हमारे समाज के लिए एक विडम्बना है। जो लोग पैसे या प्रतिष्ठा के लिए साहित्य-सृजन करते हैं उनके लिए साहित्य - सृजन एक माध्यम रहता है, साहित्य से उनका आंतरिक लगाव नहीं होता। उनका लेना-देना केवल अंतिम लक्ष्य के लिए होता है। निःसंदेह कुमुद जी ऐसे साहित्यकारों में नहीं थे।

आपने कुमुद जी की धरती बेगूसराय जाकर उन्हें एक-एक क़तरा राष्ट्रीय सम्मान प्रदान किया। उस समय की ख़ास अनुभूति ?

मुझे याद है जब दिनांक 12 अक्टूबर 2001 को श्री आजाद के सौजन्य से मैंने कुमुद जी को 'एक-एक कतरा राष्ट्रीय सम्मान' बेगूसराय जिले के औद्योगिक नगरी और गांव पपरौल में आयोजित समारोह में प्रदान किया था। वह क्षण मेरे लिए बहुत ही गौरवान्वित करने वाला था जब मेरे जैसा अदना साहित्यकार इतने बड़े मनीषी को सम्मान प्रदान कर रहा था।

वर्तमान साहित्यकार क्या लिख रहे हैं और क्यों लिख रहे हैं जबकि आज समाज में बदलाव की सख़्त ज़रूरत है लेकिन समाज दिन-प्रतिदिन टूटता और बिखरता ही जा रहा है। आपकी दृष्टि में साहित्यकारों को मौजूदा परिवेश और परिस्थितियों के मद्देनजर कैसी भूमिका निभानी चाहिए ?

आज के युग में साहित्यकार की भूमिका काफी कठिन हो गई है। संवाद के इतने अधिक साधन उपलब्ध हो गए हैं और समाज को देखने-सुनने के इतने अन्य आयाम उपलब्ध हो गए हैं कि साहित्यकारों को पाठकों से जुड़ने का माध्यम खोजना कठिन से कठिनतर होता जा रहा है। दूसरी बात समाज में जितने परिवर्तन आज के युग में एक साल में हो जाते हैं उतने परिवर्तन पिछले युग में दस साल में नहीं होते थे। भौतिक सुख की ओर पूरा समाज इतना उन्मुख हो गया है कि साहित्य, संगीत, कला या तो लोगों से दूर होते जा रहे हैं या उनकी उपलब्धता एवं उपयोगिता का एक अलग मापदंड बन रहा है। ऐसी स्थिति में आज के युग के साहित्यकारों को लीक से हटकर नए रास्ते तलाशने होंगे और यह नयापन भाषा, कथ्य, संवाद शैली सभी दृष्टि से जरूरी है।

आप नहीं लिख पाए हैं ?

मैं बहुत दिनों से एक उपन्यास लिखने की सोच रहा हूं। 40-50 पृष्ठ तो 1990-91 में लिख भी चुका हूं लेकिन उसके बाद जो तारतम्य टूटा वह फिर जुड़ा नहीं।

सेवानिवृत्ति के बाद किस विधा पर ज़ोरदार ढंग से लिखना चाहेंगे ?

सेवानिवृत्त होने के बाद व्यंग्य विधा पर भी अधिक से अधिक रचनाएं करना चाहता हूं क्योंकि तब मुझे व्यंग्य लिखने की पूरी आज़ादी होगी।

राजनीति के प्रति आपका दृष्टिकोण ? क्या अवकाश ग्रहण करने के बाद आप राजनीति की ओर अपना रुख़ करना चाहेंगे अगर किसी पार्टी की ओर से पेशकश आई तो ?

राजनीति के प्रति मेरा दृष्टिकोण बहुत बुरा कैसे हो सकता है जबकि मैं ख़ुद ही राजनीति विज्ञान का छात्र रह चुका हूं। लेकिन आज के माहौल में राजनीति करना और उसमें सफल होना, एक ऐसे व्यक्ति के लिए जो अब तक उससे अलग रहा हो, कितना संभव है इसका अनुमान आप खुद कर सकते हैं। हमें नहीं लगता कि किसी पार्टी की ओर से मुझे राजनीति में आने की पेशकश होगी। लेकिन अगर पेशकश होती है तो उस समय देखी जाएगी। अभी इस संबंध में सोचना व्यर्थ है। ●

(आमने-सामने)

▸▸रमेश पोखरियाल निशंक
वरिष्ठ साहित्यकार एवं प्रमुख राजनेता

रमेश पोखरियाल निशंक से डॉ दर्शनी प्रिय की बातचीत

टूट चुके आम आदमी को मेरे साहित्य ने ख़ास स्थान दिया है: रमेश पोखरियाल निशंक

साहित्य की दुनिया में जब भी निशंक का नाम सामने आता है तो एक विराट व्यक्तित्व वाली ऐसी काया उभरती है, जो तमस में भी जो सैकड़ों जुगनूओं की चमक से भरी मुस्कान बिखेरती प्रतीत होती है। इन्होंने अपनी कृति के जरिए घर घर में आम आदमी के विराट कद को स्थापित कर दिया है।जो लड़ता है तो अंधेरों से, झुकता है तो केवल अटल इरादों के सामने, उठता है तो फौलादी संकल्प लिए और चलता है तो ज्ञान की मशाल जलाते हुए। निशंक जी का रोम-रोम मुक्ति संग्राम के घनांधकार में प्रकाश के उदय सा सहसा चौकांता है।

आपने निशंक साहित्य को घर-घर में स्थापित कर दिया है कैसे संभव हुआ?
देखिए हमारे साहित्य,समाज और लोक परम्परा में सदियों से साहित्य का अहम योगदान रहा है। मैने तो बस कोशिश की है कि अपने प्रयासों से आम आदमी के संघर्ष को जन जन तक पहुंचा सकूं। निशंक साहित्य अंधेरे से लड़ने की ताक़त देता है। टूट चुके आम आदमी को मेरे साहित्य ने ख़ास स्थान दिया है। मैं मानता हूं साहित्य ने सदियों से समाज अच्छाइयों और बुराइयों को एक दर्पण के रूप में अपने भीतर उतारा है और समय-समय पर इस दर्पण में हम अपना अक्स देख कर ख़ुद को बदलते रहे इसलिए मेरी कोशिश हमेशा ऐसी रहती है की सर्वहारा वर्ग साहित्य के केंद्र में आए और हम उसे पढ़कर ख़ुद को आत्मसात कर सकें।

आपने साहित्य,परंपरा और लोक संपदा का इतना बड़ा संसार अपने आस पास रचा है स्थितियां कितनी अनुकूल रही। राह में कितनी अड़चनें आईं?
देखिए,मैंने जब अपनी यात्रा शुरू की थी तो मैं अकेली नहीं था। मेरे साथ लोक और वेद की परंपरा, संचित ज्ञान और समय बोध था।उन्हें साथ सबको साथ लेकर चलना था। अंधेरे की अट्टालिकाएं पार करनी थीं। लोक के भीतर आस्था और विश्वास को ऊंचा उठाना था। बाहर से भीतर तक फैली अंधेरे को उजाले में बदलना था। इसी आस्था के सहारे मैंने अपनी शुरूआत की। हमारे आस पास कितनी बड़ी सांस्कृतिक संपदा बिखरी है जिसे समेटना ज़रूरी था। अभी बहुत कुछ फैला है जिसे बांधना शेष है। इस यात्रा में मेरी आस्था मेरे भीगे गए यथार्थ ने बहुत मदद की। मैं संस्कारों के पुण्य के सहारे आगे बढ़ता रहा और विपरीत परिस्थितियों में भी अंधेरे के समुद्र को पार करती रहा। जब हम पूरी सृष्टि को अपने संवेद वितान में रखते हैं, तब हमारे भीतर वह अभाव उदित होता है, जो अपने से परे जाता है। हमारे देश की संस्कृति, इसके खेत गांव, प्रकृति इस तरह मेरे भीतर उतरे थे कि उन्हें चेतना के सहारे बाहर लाना ही था।

100 से भी ज़्यादा पुस्तकें, संस्मरण,यात्रा वृतांत, कविताएं, और कहानियों का संकलन। हज़ार से भी अधिक लेखों का विभिन्न साहित्यिक पत्रिकाओं में प्रकाशन, विलुप्त सांस्कृतिक पद्धतियों का बखान, धर्म और संस्कृति पर इतना काम, साहित्यिक यात्राएं । क्या इन सब के बीच क्या रमेश पोखरियाल निशंक ख़ुद को याद रख पाते हैं?
हंसते हुए, देखिए जो सर्जक है वह असहायों का सहारा बनता है,देश काल और विचारों की खाई को पाटता है, सुख में दुख में,सच में,स्वप्न में हमेशा साथ रहता है।ऐसे रचनाकारों की दुनिया में क्या कमी जो, उन्मुक्त भाव से सर्वसमावेशी समाज के निर्माण में लगा है। मैं जब थकता हूं तो अध्यात्म का सहारा लेता हूं। मेरे मन में कितने सपने हैं। देश के लिए, अपनी भाषा, साहित्य और संस्कृति के लिए उन्हें पूरा करना है। इस यात्रा में जितना हो सकेगा, पूरा करने का संकल्प है। शायद यह संकल्प थकने नहीं देता, जो निरंतर चरैवेति -चरैवेति के प्रति आस्था बनाए रखता है। यात्रा के अंतिम क्षण तक यह संकल्प साथ

रहेगा तो संतोष होगा। मेरे भीतर का ब्रह्म जिस दिन अपनी बाहों में समेट लेगा यात्रा पूरी हो जाएगी। यात्रा थमेगी नहीं ऐसा मेरा विश्वास है।

अपने यात्राएं ख़ूब की है विदेश में यात्राओं के दौरान जीवंत संस्मरण को अपनी पुस्तकों में समेटा है। उस बारे में कुछ बताएं ?

एक राष्ट्र के संस्कार,उसकी मूल्य एवं आदर्श, उसकी उदारता, संबंधवादी भावना, मानवतावादी दृष्टिकोण और समस्त वैचारिक एवं दार्शनिक संदर्भ उसकी अपनी अपनी संस्कृति में झांकने बोलते हैं। मैं जब भी विदेश यात्रा पर गया, मैं उन चीज़ों को अपने भीतर महसूस किया। और संभवतः इसे अपने शब्दों से सहज और सुगम रूप से साकार किया। विश्व कुटुंबकम की भावना से परिचालित होकर जब हम पूरे विश्व को एक इकाई में बांधकर देखना चाहते हैं तो सहज सुगम निर्विवाद एवं सार्वभौमिक विश्व भाषा के रूप में एकमात्र विकल्प हमें दिखाई देता है

आपका साहित्य,आम आदमी से प्रभावित दिखता है। उसके संघर्षों, उसकी करूणा और उसकी व्यथा को आपने बख़ूबी अपने साहित्य में स्थान दिया है। क्या यह मान कर चलें कि कहीं न कहीं यह लेखक का अपना भोगा हुआ सच है ?

सुमित्रानंदन पंत जी की पंक्तियां बिल्कुल सटीक है कि वियोगी होगा पहला कवि, आह से उपजा होगा गान, निकल कर आंखों से चुपचाप, बही होगी कविता अनजान।

मेरी पुस्तक इस बात का एहसास कराती है कि यह लेखक के निजी अनुभव पर आधारित हैं। मैंने अपने साहित्य में ख़ासतौर से गांव देहात के जीवंत परिवेश की सारी बारीक़ियों को चित्रित किया है।एक लेखकीय से दृष्टि उसी स्थिति में जाकर अनुभव करने की क्षमता के चलते मैं अनुभूति की सच्चाई और अनुभूति की प्रमाणिकता का एहसास करा पाने में सक्षम होता हूं। मैंने अपने लंबे और बड़े होते जीवन में अपने आसपास के परिवेश में जीवन की तमाम मुश्किलों और समस्याओं को नज़दीक़ से देखा है। शायद यही वजह है कि मैं उन्हें अपनी पुस्तक में सजीवता के साथ स्थान दे पाता हूं।

एक आयरिश लेखक ने कहा है क्या कहानियां सचमुच ही गुरिल्ला लड़ाई की तरह है, जो सरहदों पर लड़ी जाती है। वाक़ई आपकी पुस्तकों को पढ़ते हुए ऐसा एहसास होता है कि कई कई अनुभवों से गुज़र कर ऊंचे पायदान पर पहुंचकर आपने साहित्य गढ़ा है ?

लेखन की प्रक्रिया जितनी जटिल, कष्टकारी एवं कठिन साधना है। उसका लक्ष्य तथा उसे प्राप्त करने का रस भी उतना ही आनंदप्रद है, लेखक के लिए भी तथा पाठक के लिए भी। इस दुष्कर प्रक्रिया को साधने तथा उसे सरल सहज बनाकर स्पष्ट करने की प्रक्रिया जितनी सहज, सरल और कठिन एवं बीहड़ यात्राओं से मुक्त होगी, विषय उतना ही बोधगम्य तथा ग्राह्य बनेगा। विषय विस्तार की अपेक्षा अथवा अधिकांश विषयगत आयामों का ख़ुलासा जितना अपरिहार्य होता है, उसकी गहन वैज्ञानिक व्याख्या तथा उसे संपृक्त विविध अर्थ छवियों की मौलिक प्रस्तुति के साथ ढालना भी उतना ही अनिवार्य माना जाता है। एक लेखक के तौर पर बस कोशिश कर रहा हूं। कितना रच पाऊंगा, कितना समेट पाऊंगा, नहीं जानता। बस इतना जानता हूं कि जब तक सांस है,तब तक मेरी क़लम थकेगी नहीं। ●

माधव कौशिक की ग़ज़लें

माधव कौशिक
वरिष्ठ साहित्यकार

एक

क्या पूछते हो मुझसे फसाना उड़ान का
दुश्मन रहा हूं आप मैं अपनी ही जान का

सारी ज़मीन ज़ेहन के ज़र्रों में क़ैद है
कोना नहीं बचा है कोई आसमान का

हाकिम के कान शोर के झटकों से फट गए
कैसा था ये कमाल किसी बेज़ुबान का

सूरज का ताव देखकर जुगनू ने ये कहा
इक़बाल है बुलंद मेरे ख़ानदान का

गीता पढ़ी तो और भी हैरान हो गए
कैसे, कहां से आ गया पन्ना क़ुरान का

धरती पे तो नसीब नहीं हो सका अभी
काग़ज़ पे ही उतार दे नक़्शा मकान का

पांवों के छाले फूट कर रिसने लगे तो क्या
भूला नहीं हूं आज तक चेहरा थकान का

दो

हँसने का रुलाने का हुनर ढूंढ रहे हैं
हमलोग दुआओं में असर ढूंढ रहे हैं

जब पांव सलामत थे तो रस्ते में पड़े थे
अब पांव नहीं हैं तो सफ़र ढूंढ रहे हैं

अब कोई हमें ठीक ठिकाने तो लगाए
घर में हैं मगर अपना ही घर ढूंढ रहे हैं

क्या जाने किसी रात के सीने में छिपी हो
सूरज की तरह हम भी सहर ढूंढ रहे हैं

हालात बिगड़ने की नयी मंज़िलें देखो
सुकरात के हिस्से का ज़हर ढूंढ रहे हैं

कुछ लोग अभी तक भी अँधेरे में खड़े हैं
कुछ चाय के प्यालों में गदर ढूंढ रहे हैं

तीन

चला तो ख़ूब लेकिन मील पत्थर तक नहीं पहुंचा
हमारे प्यार का रिश्ता मुक़द्दर तक नहीं पहुंचा

नहीं तो वक़्त के सैलाब में सब डूब सकते थे
ग़नीमत है कि पानी आपके सर तक नहीं पहुंचा

इसी इक बात पर तुम ख़ुद को ख़ुशक़िस्मत समझते हो
मेरा पत्थर तुम्हारे कांच के घर तक नहीं पहुंचा

न कोई आदमी इस आसमां को छू के आया है
ये अंबर भी किसी इंसान के सर तक नहीं पहुंचा

हमेशा से नदी ने ही समुंदर को तलाशा है
कोई सागर किसी दरिया के दर तक नहीं पहुंचा

सभी के सामने साकी ने रखे जाम भर-भर के
भरी महफ़िल में कोई जाम शायर तक नहीं पहुंचा

चंडीगढ

अनिरुद्ध सिन्हा
वरिष्ठ साहित्यकार

अनिरुद्ध सिन्हा की ग़ज़लें

एक

जब घटाओं में डूब जाता है
चढ़ता सूरज भी लड़खड़ाता है

वो कहां पढ़ के देखता है तुझे
तेरी तस्वीर जो बनाता है

रोज़ करता है साज़िशें लेकिन
ख़ुद को हमदर्द जो बताता है

तोड़कर अपने घर की पाबंदी
कौन ग़ैरों के घर भी जाता है

वो मुलायम सा ढ़ेर वादों का
जब हमें चाहता नचाता है

दो

बाज़ार की तरह जो ख़ुद को बदल रहे हैं
कागज़ का फूल लेकर कांटों पे चल रहे हैं

क़ीमत चुका रहे हैं जो गांव छोड़ आए
शहरों के रंज़ों-गम के सांचे में ढल रहे हैं

हमसे ही इल्म लेकर वो उड़ रहे फ़लक पर
हम घर में बैठे-बैठे बस हाथ मल रहे हैं

ख़ुशबू की शक्ल में हम पहुंचेंगे अंजुमन तक
ग़म के समंदरों से बाहर निकल रहे हैं

ऐसा न हो कि सारे घर बार ही जला दें
ये जो महीन धागे रिश्तों के जल रहे हैं

तीन

कभी तो साथ हमारे भी तुम चले होते
हमें यक़ीन है इतने न फासले होते

हमारे दर्द के अहसास में ढले होते
तुम्हारे सामने कुछ और मसअले होते

ये कम नहीं कि कभी एक ही रुलाएगा
तुम्हें ये शौक़ है दो-चार लाडले होते

कहीं दरख़्त कहीं राह हम बना लेते
अगर जो धूप की ज़ुल्मत के मामले होते

सियासी आग अगर बुझ गई नहीं होती
चटख के टूट के कितने ही घर जले होते

गुलज़ार पोखर,मुंगेर

अंगुली

डॉ रामदरश मिश्र
वरिष्ठ साहित्यकार

अंगुली में दर्द था
नींद नहीं आ रही थी
मैं व्यथा से बोल उठा-
''तुम्हारे लिए बहुत परेशान हूं मेरी प्यारी-प्यारी अंगुली'' !
लगा वह अपने दर्द में भी मुस्कुरा पड़ी
एक आवाज़-सी आई
''मैं तो तुम्हारे शरीर की एक छोटी-सी नाचीज़-सी इकाई हूं
मेरे लिए क्या परेशान होना
तुम तो यह सोच कर परेशान होगे कि
कल वह सब कैसे होगा
जो तुम मेरे द्वारा करते रहे हो''
एक स्तब्धता-सी छा गई मेरे ऊपर
लेकिन कोई भीतर बोलने लगा-
सच तो है
मैंने तो आज तक इस पर कभी विचार ही नहीं किया
सोचने लगा तो आश्चर्य
इन अंगुलियों से कितना कुछ निकलने लगा-
जीवन की अनंत क्रियाएं, अनंत स्पंदन, अनंत छवियां
सुबह उठते-उठते
ये हमारे साथ हो लेती हैं
और बनती चली जाती हैं
मुंह धोने का चुल्लु
पानी का ग्लास
चाय की प्याली
देवता को अर्घ्य देने की अंजलि
भोजन और मुंह के बीच संवाद
ये फैल जाती हैं यहां से वहां तक
कर्मक्षेत्र में पकड़ बनकर-
किसान के हाथ में बैल का पगहा
हाथ की मूठ पर रचनात्मक दबाव
फसल काटता हुआ हंसिया
लोहे को नाना रूप देता हथौड़ा
अनाज पीसता हुआ जांता
चूल्हे पर सिंकती हुई रोटियां
बच्चों पर मां की प्यार- भरी थपक
अंगुलियां मां-बाप बनकर
शैशव को भूमि से उठाती हैं और गति देती हैं
आपस में जुड़कर नमस्कार बन जाती हैं
और तन जाती हैं मुट्ठी बनकर असत्य के सामने
किसी विद्रुप पर इशारा करती हुई हंसती हैं
या राह दिखती हैं किसी भूले-भटके को
सभी अंगुलियों की अपनी-अपनी पहचान है और कर्म है
लेकिन जब एक की अंगुलियां
दूसरों की अंगुलियां से मिलती हैं
तब बन जाती हैं दो युवा हृदयों का कोमल बंधन
बुढ़ापे का सहारा
अन्याय का प्रतिरोध करती मानव-ऋंखला
और मेरा तो वजूद ही नहीं होता जो आज है
मुझे याद है
जब मैं बचपन में पढ़ने के अयोग्य घोषित कर दिया गया
तब मां की अंगुलियों ने सुबह-सुबह
मेरे सामने अलाव की राख फैला दी
और मेरी अंगुली पकड़कर 'क' लिखवाया था
फिर तो मेरी अंगुलियों से अक्षर झरते चले गए
अक्षर शब्द बने, शब्द भाषा
और भाषा मुझे अपने में भरती हुई पुस्तकें बन गई
इन्हीं अंगुलियों पर गणित सीखा
और इन्हीं पर छंदों का अभ्यास किया
न जाने कैसे लोग बोलकर रचनाएं लिखते हैं
मैं तो रचनाओं के बारे में सोचता-सोचता
निष्क्रिय- सा बैठा रहता हूं
जैसे ही लेखनी मेरी अंगुलियों में आ जाती है
सबकुछ मूर्त होने लगता है
न जाने कितने आंसू और हंसी
यथार्थ और स्वप्न
संवेदन और सोच
झरे हैं इन अंगुलियों से कागज पर
कविता बनकर, कथा बनकर, निबंध बनकर
इनमें भरा है फूलों का स्पंदन
कांटो की चुभन
बचपन की मासूम लय
यौवन की मादकता की ऊष्मा
आंसुओं को पोछने का दर्द
श्रम का मैल धोने की करूणा
भिन्न-भिन्न मौसमों के ठंडे-गरम जल की कथा
सब मिलकर मेरी चेतना में उतरते रहे हैं
और फिर
इन्हीं अंगुलियों द्वारा झरते रहे हैं कागज़ पर
ठीक कहती हो मेरी प्यारी-प्यारी अंगुली
मैं सचमुच अपने लिए परेशान हूं
आख़िर तुम में मैं ही तो हूं।

द्वारका, नई दिल्ली

जाबिर हुसेन की कविताएं

उनकी उम्र

मेरी मेज़ पर रखी
गुलाब की पंखुड़ियां
महीनों मुझे अपनी
ख़ुशबू का अहसास
कराती रहीं

मैंने गुलाब से कभी
उसकी उम्र नहीं पूछी!

इस पल

मैं जानता हूं
अच्छी तरह जानता हूं मैं
जब भी मिलेगी उसे
मेरे पैरों की
हल्की सी आहट
उदास आंखों में उसकी
जल उठेंगे उम्मीदों के
कई चिराग़
उतर आएगी पुतलियों में
हया की एक डोर
जिसका रंग यक़ीनन
गुलाबी होगा
मैं जानता हूं
अच्छी तरह जानता हूं!

उसे देवताओं की गु़लामी मंजूर नहीं थी

पुरोमीथियस
की तरह ही
उसने भी
स्वर्ग से निकलते वक़्त
आत्म-सम्मान की
एक छोटी लौ
चुरा ली थी

तब देवताओं की
भवें तन गई थीं!

जाबिर हुसेन
वरिष्ठ साहित्यकार

मैं जानता हूं

मैं जानता हूं
अपने अनुभवों से
कि आदमी
गिरता क्यों है

किसी ने पूछा नहीं था
एडुआर्डो गालेयानो से
उसके गिरने का सबब
मगर उसने कहा
वो गिरता है,क्योंकि
वो चलता है
उसकी नज़र में
चलना और गिरना
दोनों अहम है

मैं ख़ुद भी जानता हूं
अपने चलने की वजह

मैं गिरता हूं, कि मुझे
आगे भी चलना है!

लोहियानगर, पटना

ओ चिरई!

डॉ बुद्धिनाथ मिश्र

डॉ बुद्धिनाथ मिश्र
वरिष्ठ साहित्यकार

ओ चिरई मेरे घर आना
बिछा तुम्हारे लिए दुआरे
पानी औ कंगनी का दाना।

जबसे तूने तजा गांव है
सूनी है खेती-खलिहानी
बच्चे खोये संगी-साथी
हुए अधमरू छप्पर -छानी।
दिग्गज हो या लघु पतंग हो
सबका हक़ है इस धरती पर
हमको लगी हवा पछवा जब
तोड़ दिया सब ताना-बाना।

इतने हम हो गए मतलबी
पंख नोचकर तुम्हें उड़ाया
भूल गए बातें पुरखों की
अमरित छोड़ ज़हर अपनाया।
पहुंचे जब विनाश के तट पर
देखीं जलती हुई चिताएं
छोटे-बड़े सभी जीवों का
बड़ा मोल है,तब यह जाना।

बाग़-बगीचे सब उदास हैं
पंछी का कलरव ग़ायब है
कोयल -मोर हुए संन्यासी
मधुवन का वैभव ग़ायब है

आओ सगुन पंछियों आओ
खोंता फिर से नया बनाओ
तुमसे हम हैं,हमसे तुम हो
तुमको देंगे हम हर्जाना।

देहरादून

रोटी का गीत

अशान्त भोला

अशान्त भोला
वरिष्ठ साहित्यकार

हल करना है हमको मिलकर रोटी का सवाल
इंक़लाब रोटी की ख़ातिर चारो ओर बवाल
रुखी-सूखी बासी रोटी
आधी हो या गोल
चाहे हो जैसी भी रोटी
पर होती अनमोल,
कोई मौन उड़ाता खाता, कोई रोटी को मोहाल,
क़िस्मत रोटी, अस्मत रोटी
रोटी खेल-तमाशा
लाचारी-मजबूरी रोटी
आशा और निराशा,
रोटी का बाज़ार गर्म है, मेहनतकश बेहाल,
मेहनत और मजूरी रोटी
रोटी ख़ून-पसीना
रोटी नहीं मयस्सर हो तो
फिर कैसा है जीना
हक की रोटी छीन के लेंगे, मत के ऐ मेरे लाल,
खुले मंच पर भाषण रोटी
संसद साथ सिंहासन रोटी
तालाबंदी,नारे,झंडे
जुलूस, बहस, आश्वासन रोटी
रोटी की मुश्किल सुलझाते बीते कितने साल,
रोटी का अंबार कहीं
धंधा और व्यापार कहीं
बदक़िस्मत सदियों से तरसे
हल्ला, हाहाकार कहीं
गोदामों में भरी है रोटी, खाली अपना थाल
हल करना है हमको मिलकर रोटी का सवाल

मोज़फ़रा, बेगूसराय, बिहार

राजेन्द्र गुप्ता की कविताएं

एक अहसास

रंक से राजा की कहानी
को साकार करके भी
तुमने कैसे
त्याग दिया था
एक दिन
सबकुछ ?

क्या
थक कर
हालात से?
उम्र से ?
नियति से?
या स्वयं से ?

▸▸ **राजेन्द्र गुप्ता**
वरिष्ठ साहित्यकार

क्योंकि
मैं तो
हालात, उम्र
और नियति से
लड़ता,
आज भी
उलझा हूं
वैसे ही
अपने ख़्वाबों
और
अरमानों के
मायाजाल में।

छटपटाता हूं
कसने को लगाम
वक़्त की।
और
भटकता हूं
हवा में
छूने को आसमान
आज भी।

मुझे
राह दो पिता।

अंदरूनी रास्ते – अधूरे रास्ते

कोई भी रास्ता कितनी भी दूर तक
कितना भी साफ़ क्यूं ना दिखाई दे
एक हद के बाद गुम हो जाता है
वहां जाने के बाद ज़रूरी नहीं कि
आगे भी उतना ही साफ़ दिखाई दे

ये भी हो सकता है
कि उसके बाद रास्ता ही ना हो
किसी बीहड़ जंगल या मरुस्थल में विलीन हो जाए

या फिर रास्ते का वो सिरा अचानक
एक ऐसे कगार पर पहुंच जाए
जिसके नीचे अथाह गहरी खाई हो

या चारों तरफ़ क्षितिज तक फैला समुंदर हो
और तुम्हें तैरना ना आता हो
और जीवन-यात्रा के अनजान रास्ते
तुम्हें आकर्षित करते हों

और तुम्हें ज़िंदगी से बेहद प्यार हो
तो फिर ये होगा ही

इसलिए
यदि तुम ज़िंदा रहना चाहते हो
तो तुम्हें इस विराट शून्य में
अगला क़दम लेना ही होगा
क्योंकि
ज़िंदगी में
वापसी
मुमकिन नहीं।

मुंबई

प्रतिभा चौहान की कविताएं

प्रतिभा चौहान
वरिष्ठ साहित्यकार

लक्ष्य भी एक है

हमने भी सभी की तरह मनाया ख़ुशियों का जश्न
और द्रवित हुए अनायास मिले हुए दुःख से

हम सामान्य मनुष्य थे
अनुष्ठानों और समारोहों में मिलती थी शांति

ख़ुशियां मनाते थे
निराशाओं का जश्न तो क़तई नहीं मना सकते

क्योंकि हम सीधे-साधे मनुष्य
मधुर शक्ति और ब्रह्मांड के पूजक थे

विशाल परिदृश्य में पवित्र भूमि पर बसते थे हमारे प्राण
हमें हमसे ज़्यादा प्रिए थी हमारी धरती

उसी के हो लिए जिसने प्रेम दिया
जड़ों से जुड़े रहे उम्र भर

अगर खोजोगे
किसी प्राचीनतम जड़ को
तो भीतर ही भीतर यक़ीनन पाओगे
हमारा गोत्र भी एक ही है

एक ही पिता की संतान
लगते हैं आपस में भाई और बंधु

देखो
हमारा रक्त भी एक ही है
और पीड़ा भी

हम दो आंख, दो हाथ और दो पांव वाले जीव
एक ही बिंदु से प्रारंभ होने वाली आकृति हैं

हमारे पास सूरज की बराबर रौशनी,
बराबर हवा, जल और जीवन है

हमारे मस्तिष्क भी एक जैसे हैं,

रास्ते भी
और कमोबेश लक्ष्य भी एक ही है।

दो दीवारों के मध्य

दो दीवारों के मध्य
रहता है कुछ रिश्तों का प्रकाश

कुछ प्यार दुलार की खिड़कियां
गुनगुनी धूप सी संवेदनाएं

कुछ नाराज़गी
फ़र्श पर पड़ी धूल की तरह

थोड़ा थोड़ा दुख भी
खाने में कुछ ज़्यादा पड़े हुए नमक की तरह

जो सदैव नहीं रहता विद्यमान
पर उसकी आहट महसूसती है एक स्त्री
भीतर ही भीतर

और संतुष्टि
हर बर्तन में भरे हुए पानी की तरह

ख़ुशियां रोज़ चूल्हे पर चढ़े दूध सी
कुछ प्रतीक्षा खुरदरे फ़र्श की तरह

और एक स्वतंत्र पुरुष रखता है
सुरक्षा का ख़्याल

और अपने विद्यमान होने का
एक लंबा चौड़ा अहाता।

सिवान, बिहार

नववर्ष
लोहड़ी, मकर
संक्रांति की
हार्दिक शुभकामनाएं
45 YEARS OF EXCELLENCE
!! RADHA SOAMI JI !!
Kasturi Jewellers
SINCE 1976
100% HALLMARK JEWELLERY SHOWROOM
#GOLD #DIAMOND JEWELLERY #SOLITAIRES
100% Lifetime Maintenance Free
100% Buy Back Diamond Jewellery
100% Certified Diamond Jewellery
Shop No. 15, 16, 17, 18, SDM Market, Mangal Bazar Road, Uttam Nagar, New Delhi-110 059
Shop No. 54-55, Main Pankha Road, Opp. Sagar Pur Police Station, New Delhi-110 046
Kasturi Lal Ph. 98186 09444 | Manish (Monu) Ph. 98186 11313

विगत 23 वर्षों से देशहित में समाज-निर्माण के संकल्प के साथ

न हम डरते है न डराते हैं
हम देशप्रेम की भावना जगाते हैं

अगर आप में है जोश और
देश से प्यार

तो आइए दिल्ली से प्रकाशित
राष्ट्रीय पाक्षिक पत्रिका
दूसरा मत
के साथ

अगर शिक्षक, प्रोफेसर, इंजीनियर और डॉक्टर बनते हो तो हमेशा एक ही काम करोगे लेकिन पत्रकार बनते हो तो दुनिया समझने को मिलेगी, दुनिया समझाने को मिलेगी। दुनिया को पढ़ने का मौक़ा मिलेगा, दुनिया को पढ़ाने का मौक़ा मिलेगा

हम आपके हाथ में देते हैं क़लम
समाज-निर्माण की ताक़त के साथ।

योग्यता
ख़बरों की समझ
और देश के साथ
सच्ची प्रेम-भावना

सोचो, समझो और दूसरा मत से जुड़ो

संपर्क : +91-9643709089